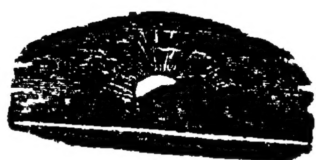
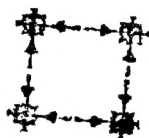
मेरी विकास-कथा

अर्थात्

दिव्य-दर्शन



लेखक—स्वामी सत्यभक्त ⁷ नास्तिकता



[जुलाही ११९४२ इतिहास संवत्]

मूल्य बारह आना.

प्रकाशक:—
मंत्री—सत्यसन्देश-ग्रन्थमाला

सत्याश्रम, वर्धा.
(सी. पी.)

मुद्रक—
मंत्री—सत्याश्रम-मण्डल
सत्येश्वर प्रिंटिंग प्रेस.

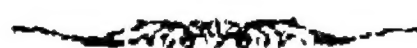
प्रस्तावना

'मेरी विकास-कथा' का मेरे विकास से या मेरी कथा से कितना ताल्लुक है,—इस का माप-तौल कुछ कठिन ही है। फिर भी इस से मुझे विकास का सन्तोष और कथा का सुख मिला है। यह आध्यात्मिक या मानसिक जगत् की कहानी या भ्रमण-वृत्तान्त, सर्वधर्म-समभाव पर एक नये ढंग से प्रकाश डालता है। धर्मों और धर्म-संस्थापकों की दिव्य एकता का प्रदर्शन करने से वास्तव में यह 'दिव्यदर्शन' है।

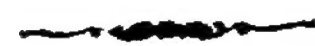
इस पुस्तक में धर्मों के धार्मिक महात्माओं के प्रकरण में महात्मा कार्लमार्क्स को भी एक पैग़म्बर के रूप में देखा गया है। इस से समझा जा सकता है कि मेरे 'धर्म' की व्याख्या में उस नास्तिकता की भी गुंजाइश है, जो मानव-समाज के अन्धेर और अत्याचार को दूर करने के लिये ज़रूरी है।

इस पुस्तक में सर्वधर्म-समभाव के दृष्टिकोण को सुरक्षित रखते हुए हरएक समाज की चुभती हुई समालोचना की गई है। पर हितैषिता को नष्ट या प्रच्छन्न नहीं होने दिया गया है। आशा है, पाठक रुष्ट न होकर आत्म-निरीक्षण से काम लेंगे।

ता. २१ धाम ११९४३ —सत्यभक्त



विषय-सूची



मेरी विकास-कथा

अर्थात्

दिव्य-दर्शन

(१)

मैं एक आत्मा हूँ। प्राणि-जगत् के असंख्य गावों में घूम चुका हूँ। कभी कभी इस मानव-नगर का भी चक्कर लगाया है, पर योग्य नागरिक साबित न हो सकने के कारण यहां से निकाल दिया गया हूं। पर अबकी बार बड़े भारी दृढ़ संकल्प से मैं इस नगर में आया और काफी सफलता पा चुका हूं। यद्यपि काम अभी भी बहुत बाकी है, पर वह सिर्फ काम है—अब पतन का डर नहीं है। अब मेरी नगरिकता पक्की नींव पर खड़ी हो चुकी है और मैं बादशाह का वफादार सेवक बन चुका हूं।

जब मैं इस नगर में आया तब एक गरीब परिवार में आश्रय

लिया था। परिवार के मालिक ने मुझसे खूब प्रेम किया। जितनी शक्ति थी उतना आराम दिया। यद्यपि जिस काम के लिये या जिस सफलता के लिये मैं आया था उसमें उनसे कोई खास मदद मिलने की आशा नहीं थी, पर उनने उस दिन मुझे आश्रय दिया था जिस दिन मैं बिलकुल निराधार और पंगु था। उनका यह अहसान मैं भूल नहीं सकता।

इस नगर में चार बड़े बड़े बाजार हैं। सरस्वती बाजार, लक्ष्मी-बाजार, शक्ति-बाजार और कला-बाजार। और भी छोटी मोटी दूकानें और बाजार यहां-वहां फैले हुए हैं, पर मुख्य बाजार येही हैं, बाकी सब इन्हीं के आश्रित हैं।

सबसे पहिले मैं सरस्वती-बाजार में पहुँचा; क्योंकि यहाँ आये बिना कोई भी मनुष्य इस नगर का नागरिक नहीं बन सकता और न दूसरे बाजारों में उसकी पैठ होती है। सबसे पहिले मैं वाणीदेवी की दूकान पर गया। वाणीदेवी सरस्वती देवी की दासी हैं। जब तक इनकी पूरी कृपा न हो जाय तब तक बाजार के दूसरे भागों में कोई नहीं पूछता। कुछ वर्ष मैंने इसी दूकान पर काम किया। इसके बाद लिपि-देवी की दूकान पर पहुंचा वहां काम करने के बाद में विद्यादेवी की दूकान पर पहुंचा। बाजार का यही मुख्य हिस्सा था। विद्यादेवी की दूकान क्या थी—हजारों दूकानों का पूरा बाजार था। कोई आदमी ऐसा न मिला जिसने सारी दूकान देख डाली हो। सभी लोगों ने इसकी एक एक या कुछ शाखाओं पर जिन्दगी गुजारी थी। मैं भी कुछ शाखाओं पर काम करने लगा और कुछ स्थायी-सा स्थान बना लिया। बहुत से लोग विद्या-देवी की दूकान में थोड़ा बहुत काम सीखकर लक्ष्मी-बाजार में चले जाते हैं और फिर वहीं

स्थायी रूप में काम करने लगते हैं। कोई शक्ति-बाजार में, कोई कला बाजार में चले जाते हैं। यों हरएक आदमी को हरएक बाजार में थोड़ा बहुत चक्कर लगाना ही पड़ता है। लक्ष्मी-बाजार में सभी को जाना पड़ता है। मैंने भी सभी बाजारों में चक्कर लगाया। शक्ति बाजार में जाकर मैंने मुख्य रूप में मनोबल वचनबल विभाग में काम किया, शरीरबल विभाग में कभी कभी हाजरी बजाई। और भी छोटी-मोटी शाखाओं में चक्कर लगाया। कला-बाजार में भी कुछ काम किया पर पूरा दिन कभी काम नहीं किया। कभी कभी वक्तृत्व आदि की शाखाओं में काम किया। लक्ष्मी-बाजार में कुछ विशेष समय देना पड़ा, पर मैं इस बाजार के उसी हिस्से में गया जो सरस्वती-बाजार से सटा हुआ था। मां लक्ष्मी से भेंट करने की कभी इच्छा नहीं हुई। किसी तरह अपना काम चलाया।

सरस्वती-बाजार में मेरी रुचि सबसे अधिक थी। मैं इसी में अपना जीवन लगाना चाहता था। दूसरे बाजारों का सम्बन्ध सिर्फ इसीलिये था कि मैं इस बाजार में अपना स्थान बना सकूं।

खैर! इस तरह मैं विद्यादेवी की कुछ शाखाओं में एक तरह से पारंगत या चतुर हो गया। पर बड़े मुनीमजी तक मेरी पहुँच न हुई थी, उनके हाथ के नीचे काम किये बिना कोई विशेषज्ञों में नहीं गिना जाता। उनका नाम था 'अनुभव'। भाग्यवश मुझे इनके पास आने-जाने के मौके मिलने लगे। और कुछ वर्षों में इनकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा हो गई। यहां तक कि इनने एक दिन मुझसे कहा—'आज तुम्हें छोटी मां के दर्शन होंगे—उनने तुम्हें बुलाया है।'

मैंने कहा— छोटी मां कौन ?

उनने कहा—मां सरस्वती, जिनका यह सारा बाजार है।

मैं हर्ष से नाच उठा। पर एक जिज्ञासा पैदा हो गई थी इसलिये मैंने पूछा —तो बड़ी मां कौन हैं ?

अनुभव ने कहा—यह तो अपनी छोटी मां से पूछ लेना। मैंने उन्हें प्रणाम किया और दिन अस्त होने की बाट देखने लगा। रात में मैं बुलाया गया। मां सरस्वती के पास पहुँचते ही मैंने जमीन पर सिर लगाकर उन्हें तीन बार प्रणाम किया।

उनने हाथ से मेरा मस्तक छूते हुए कहा—तूने मेरी दिन-रात काफी साधना की है, और अनुभव के पास भी तू बहुत दिन रह चुका—है यह सब समाचार मुझे मिल चुके हैं। बोल ! अब तू क्या चाहता है ?

मैंने कहा—मां, मैं विश्राम चाहता हूं ?

सरस्वती मां चौंकीं, उनने कहा—मेरा साधक होकर भी तू विश्राम चाहता है ! तू कैसा साधक है ?

मैंने कहा— मां मैं सचमुच आपके चरणों का साधक हूं। मैं कर्म का विश्राम नहीं चाहता। मरते दम तक मैं आपकी सेवा करता रहूंगा। पर मैं चाहता हूं वह विश्राम, जो कर्मयोगियों को, स्थितिप्रज्ञों को, बुद्धों और अर्हन्तों को मिलता है।

सरस्वती मां ने मुसकाराते हुए कहा-तुझे मालूम है तू क्या मांग रहा है ?

मैं-मालूम है मां, हैसियत से बहुत ज्यादा मांग रहा हूं।

सरस्वती-हैसियत का सवाल नहीं है रे ! इसमें जन्म की,

वैभव की, यश की, मान-प्रतिष्ठा की हैसियत नहीं देखी जाती। सवाल है—सर्वस्व के त्याग का।

मैं—आशीर्वाद दो मां, कि मैं वह त्याग कर सकूं।

सरस्वती—मुझे आशा है, तू वह त्याग कर सकेगा। पर वह विश्राम देना मेरे वश में नहीं है। मैं तो तुझे सिर्फ उसका रास्ता बता सकती हूं - तेरी सिफारिश कर सकती हूं।

मैं—तो मुझे कहां जाना होगा ?

सरस्वती—पहिले तो तुझे विवेक दादा के यहां जाना होगा। उनकी परीक्षा में पास हो गया तो तुझे आगे बढ़ने का अवसर मिलेगा, तब तू सत्यलोक में जायगा। वहां तू भगवान सत्य और भगवती अहिंसा के दर्शन करेगा, इसके बाद जो तुझे जानना और करना होगा वह वहीं मालूम हो जायगा। मै तुझे विवेक दादा के घर तक पहुँचाने का इन्तजाम कर दूंगी। पर सोच ले, रास्ता लम्बा और कठिन है।

मैं—सोच लिया मां, मेरे लिये तो आप ही गति हैं। लक्ष्मी, शक्ति और कला मां का मै साधक तो हूं नहीं कि मैं उनकी मार्फत विवेक दादा का घर और सत्यलोक की यात्रा पा सकूंगा।

मेरी बात सुनकर सरस्वती मां खिलखिला कर हँस पड़ीं। फिर बोली—अरे बच्चे, क्या तू यह समझता है कि मेरे सिवाय किसी दूसरे की मार्फत तू विवेक दादा का घर और सत्यलोक की यात्रा कर सकेगा ?

मैं—तो क्या मां, उन बाजारों में रहने-वाले कभी विवेक दादा का घर नहीं देख पाते, न सत्यलोक की यात्रा कर पाते हैं ?

सरस्वती मां ने दृढ़ता और गम्भीरता से कहा—नहीं। वहां से कोई रास्ता नहीं है। हां! वहां के कोई साधक जब अन्त में मेरी साधना भी करते हैं तब मेरा आशीर्वाद लेकर वे भी आगे बढ़ जाते हैं। पर ऐसे कम ही होते हैं।

ओह! वह मेरे जीवन का पहिला दिन था जिस दिन मैंने अपने परम दुर्भाग्य को परम सौभाग्य समझा। गरीबी की दीनता निर्मूल हो गई। मैंने एक सन्तोष की सांस ली। इतने में सरस्वती मां ने द्वार के बाहर की तरफ़ नजर करके आवाज़ दी—कौन है? चिन्तन!

जी हां।

इधर आओ! देखो इसे विवेक दादा के घर ले जाओ?

चिन्तन ने कहा—चलो!

मैंने सरस्वती मां की चरण-वन्दना की और चिन्तन के साथ बाहर निकल आया।

(२)

रातों पर रातें निकलती जाती थीं और मैं चिन्तन की उंगली पकड़े हुए लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ता जाता था। विकट अँधेरा था। नींद हराम हो गई थी। जब थककर क्षण भर को सुसताने लगता तो सरस्वती-बाजार के, लक्ष्मी-बाजार के, शक्ति और कला बाजार के मनोहर दृश्य आंखों के आगे नाचने लगते। मैं सोचने लगता आखिर मैं कहां जा रहा हूं और क्यों जा रहा हूँ? इस पथ का कभी अन्त होगा या न होगा और होगा तो वहां क्या मिलेगा?

पर इस निराशा को दूर कर देती थी वहां की शुद्ध हवा, जो मेरे दिमाग में ताजगी ला रही थी, ऐसी ताजगी जिसका मैंने आज तक कभी अनुभव न किया था। दिमाग की जो उलझनें आज तक कभी दूर न होती थीं—वे दूर हो रही थीं, सिरदर्द कम हो रहा था।

अन्त में एक रात ऐसी आई जब प्रकाश की किरणें दिखाई दीं। मैं समझ गया कि विवेक दादा या छोटे पिता के घर आ गया हूं। थोड़ी देर में मैं उस ज्योतिर्मय भवन के पास जा पहुंचा। उस प्रकाश-पुंज दिव्य भवन को देखकर रास्ते की सारी थकावट दूर हो रही थी। अब चिन्तन ने मेरा हाथ छोड़ दिया था और वह मेरे पीछे पीछे आ रहा था।

मैं छोटे पिता विवेक के सामने हाजिर हुआ और मैंने उन्हें तीन बार प्रणाम किया।

उनने हँसते हुए कहा—क्यों रे! रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई?

मैंने भी मुसकराते हुए किन्तु आंखे नीची करके कहा—कुछ याद नहीं आ रहा है छोटे पिता!

वे जरा और जोर से हँसकर बोले—अच्छा! रास्ते के कष्ट तू इतनी जल्दी भूल गया?

मैंने कहा—कष्ट जब सफल हो जाता है तब याद रहने लायक नहीं रहता छोटे पिता!

उनने मेरी पीठ पर दो धप्पे लगाते हुए कहा—ठीक! ठीक! तू सुपात्र जो है। देखता हूं तू स्नान कर सकेगा।

कहां स्नान करना होगा छोटे पिता?

मेरे कुंड में, चल उठ !

इतना कहकर उनने मेरी उंगली पकड़ी और उठाकर ले चले। कुंड के किनारे ले जाकर उनने कहा—कूद पड़ इस कुंड में।

आज्ञा मिलते ही मैं कूद पड़ा। ओह ! कितना क्षार था उसका पानी ! मैं कई बार समुद्र स्नान भी कर चुका था और उसके खारे पानी का मजा अभी भी याद था, पर इस कुंड के पानी की क्षारता के आगे समुद्र-जल की क्षारता नगण्य थी। शुरू शुरू में मुझे बड़ा कष्ट हुआ। मेरे कपड़ों पर जो भद्दे बेलबूटे बने थे-वे सब मिटने लगे। शरीर का मैल कटने लगा। प्राचीनता मोह, नवीनता का मोह, जाति मोह, कुल मोह, प्रान्त मोह, देश मोह, स्वत्व मोह आदि सब मोह धुल गये, मैं धुलकर निःपक्ष हो गया।

छोटे पिता ने कहा—घबरा मत, सात बार गोते लगा। मैंने हिम्मत करके गोते लगाना शुरू किया। मेरी आंखों मे दिव्य तेज आता गया। जो चीजें आज तक भीतर से न दिखी थीं—वे दिखने लगीं। जिनमें मुझे बड़ा विरोध मालूम होता था-उनमें समन्वय होने लगा। मन का सारा बोझ उतर गया। सारे बन्धन टूट गये। सारी दुनिया से रिश्ता जुड़ गया। मन में ऐसा भान होने लगा कि मैं तो किसी नई दुनिया का नागरिक हूं।

कुंड से निकलने पर छोटे पिता ने पूछा—तेरे कपड़े अब बिलकुल स्वच्छ हो गये हैं। तू चाहे तो ये ही कपड़े रख सकता है, तू चाहे तो तुझे नये कपड़े दिये जा सकते हैं।

मैंने कहा—छोटे पिता, जैसी आपकी आज्ञा हो मैं वैसा ही करूं। मैं चाहता हूं, अभी तो मैं यही पोशाक पहिने रहूं। पर

जब बड़े पिता के दर्शन करके लौटूँ तो मैं नई पोशाक पहनूं।

यही ठीक है, बड़े पिता के पास तू जिस चाहे पोशाक में जा सकता है, पर उनकी आज्ञा से जब तू दुनिया में लौटे तो तुझे नई पोशाक ही पहिनना चाहिये। नहीं तो दुनिया के लोग तुझे पहिले सरीखा ही समझते रहेंगे। जो साथ नहीं दे सकते–वे भूल से तेरा साथ देकर तेरा बोझ बनेंगे, और जो साथ दे सकते हैं वे भी भूल से तेरा साथ न देंगे। इसलिये नई पोशाक ही पहिनना ठीक है।

मैं–जो आज्ञा छोटे पिता! पर अब आप सत्यलोक में जाने की आज्ञा कब देते हैं?

तू अभी जा सकता है।

पर मेरे साथ कौन चलेगा? क्या यहां भी चिन्तन ही साथ देंगे।

नहीं, वहां उसकी ज़रूरत नहीं है। चल, कमरे में चल! तेरे स्थायी साथियों का तुझसे परिचय करा दूं।

दीवानखाने में पहुँचने पर मैंने देखा कि एक देव और तीन देवियाँ वहां बैठी हुई हैं। छोटे पिता के पहुँचने पर वे उठ खड़ी हुईं और उनके बैठने पर बैठ गईं। छोटे पिता का इशारा पाकर मैं भी एक आसन पर बैठ गया। इसके बाद छोटे पिता ने कहा–देख! ये भक्ति देवी हैं, भगवान के बिलकुल पास तक ये तेरा साथ दे सकती हैं, और दुनिया में जब भी तेरे ऊपर, भीतर या बाहर का कोई संकट आयेगा तब तेरा इशारा पाकर ये तुरंत

तुझे सत्यलोक में पहुँचा सकती हैं। ये भगवान की सबसे अधिक लाड़ली हैं। ये भगवान को मनचाहा उलहना भी दे सकती हैं॥

दूसरे ये प्रेम देव हैं, इनका चेहरा बड़ी माँ के चेहरे से बहुत मिलता है। भगवान भगवती के पास तो इनकी ज़रूरत नहीं है, पर दुनिया में इनकी बहुत ज़रूरत है। इनके साथ रहने से तू सभी को अपना सकता है।

तीसरी ये वत्सलता देवी हैं। सदा हँसता हुआ चेहरा है। जिनकी तू विशेष सेवा करना चाहेगा--उनके साथ सम्बन्ध जोड़ने में ये काफ़ी मददगार होंगी।

चौथी ये दया देवी हैं। इन्हें मैंने एक विनोद का नाम दे रक्खा है 'मीठा दुख'।

यह कहकर छोटे पिता हँसने लगे और दया देवी की ठुड्डी को हाथ लगाकर बोले—क्यों दया, नाम पसन्द है न ?

दया देवी ने कुछ व्यंग्य-सा करते हुये कहा—जी हां, आप ठहरे सबसे बड़े न्याय-देवता, सो जो कुछ आप न्याय देंगे उसमें चीं-चपड़ कौन कर सकता है ?

छोटे पिता ने कहा—बुरा न मानो दया, मैंने तुम्हें दुःख कहा है पर मीठा दुःख कहा है, ऐसा मीठा कि जिस पर मनों सुख न्यौछावर किया जा सके। उस दिन कृष्ण गा रहा था "कामये दुःख तप्तानाम् प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्" अर्थात् मैं तो दुख से तपे प्राणियों की वेदना दूर करने का वरदान चाहता हूं। दूसरे के दुख को दूर करने में,,

उनके दुःख में दुःखी होने में जो आनन्द है—उसकी बराबरी कौन कर सकता है ? तुम्हारी ये बड़ी बड़ी आंखें, जो आंसुओं का कटोरा मालूम होती हैं, इन पर सारा सौन्दर्य न्यौछावर किया जा सकता है। तुम्हारी आंखों की एक एक बूंद में सब रसों का सार भरा हुआ है। इसीलिये तो कवियों ने करुणरस को प्रधानरस कहा है। सभी सभ्य हृदयों में तुम्हारा ही तो राज्य है दया !

जी हां, पर आपके हृदय में तो नहीं है।

सच कहा तुमने, मेरे हृदय में तुम्हारा राज्य तो नहीं है, पर मैं तुम्हारा जितना ख़याल रखता हूं—उतना किसी दूसरे का नहीं रखता।

इसीलिये मेरे कपड़ों पर जब चाहे तब कैंची चलाया करते हैं !

अधूरी बात न बोलो दया, मैं कैंची भी चलाता हूं और सुई भी। फाड़ता भी हूं और जोड़ता भी हूं। आखिर मैं तुम्हारा दर्जी हूं—ठीक पोशाक बनाने के लिये यह सब करना ही पड़ता है।

छोटे पिता की बातों से सभी हँसने लगे। मैं भी हँसा, पर इस हँसी के आनन्द से अधिक आनन्द मुझे यह देखकर हुआ कि दया का छोटे पिता से कैसा मीठा सम्बन्ध है। बल्कि मैंने तो यही अनुभव किया कि ये चारों देव-देवियां जब तक छोटे पिता के अंकुश में हैं तभी तक ठीक हैं।

मैं यह सब सोच ही रहा था कि छोटे पिता ने मेरी तरफ़ देखकर कहा—क्यों रे ! क्या सोचता है ? इनमें से तू किसे पसन्द करता है ?

मैं– चारों का आशीर्वाद चाहता हूं छोटे पिता, पर अभी तो मुझे सत्यलोक में जाना है, वहां तो, खासकर बड़े पिता और बड़ी मां के पास तो भक्ति-देवी ही मेरा साथ दे सकती हैं। इसलिये अभी तो मैं इन्हीं से प्रार्थना करता हूं कि मेरा साथ दें। बाद में जब मैं दुनिया में सेवा के लिये लौटूंगा तब चारों का साथ चाहूंगा। हां, मैं चोट न खा जाऊं या चोट खा जाने पर धराशायी न हो जाऊं–इसलिये भक्ति-देवी के हाथ में अपनी उंगली दिये रहूंगा। भगवान के दर्शन के बाद मैं अपने को सत्यभक्त कहूंगा। भक्ति-देवी के आशीर्वाद से मुझे भगवान के चरणों का सहारा मिला रहेगा।

बहुत अच्छा, तेरे इस रुख से मैं बहुत खुश हुआ। जा, अब तू चला जा!

मैंने विवेक के चरणों में तीन बार सिर झुकाया। प्रेम, वत्सलता और दयादेवी को प्रणाम किया और अपनी उंगली भक्तिदेवी के हाथ में दे दी और सत्यलोक के लिये प्रस्थान किया।

(३)

कुंड-स्नान करने से खूब स्वस्थता का अनुभव हो रहा था। छोटे पिता–विवेक का आशीर्वाद भी था, भक्तिदेवी साथ में थीं इसलिये आगे का रास्ता कठिन न मालूम हुआ। कुछ दिनों में ही मुझे एक ज्योति-पुंज दिखाई दिया। उसका विस्तार और तेज देखकर मैं चकित हो गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं किसी महान सूर्य के पास पहुँच गया हूं, पर आश्चर्य की बात यह थी

कि साधारण प्रकाश में मेरी जो आंखें चकचौंधया जाती थीं—वे आज इस महान तेजःपुंज के सामने भी नहीं चकचौंधया रही थीं। मैं समझ गया कि विवेक-कुंड में स्नान करने से जो मेरी ज्योति बढ़ी है—उसीके कारण आंखें नहीं चकचौंधया रही हैं।

पास पहुँचने पर मालूम हुआ यह किसी नगर के बाहर का विशाल कोट है। वास्तव में यह सत्यलोक का बाहरी कोट था। जब इसके विशाल द्वार पर मैं पहुँचा, तब मैंने सिर झुकाकर सत्येश्वर को ध्यान से प्रणाम किया। भीतर पहुँचने पर मालूम हुआ कि सैकड़ों चमकदार सड़कें और भवनों से भरा हुआ यह एक विशाल नगर है। भक्ति-देवी ने कहा—यह भक्त-नगर है। इसमें असंख्य तीर्थंकर पैगम्बर नबी अवतार अर्हत जिन आदि के भवन बने हुए हैं। क्या तुम किसी के यहां चलना चाहते हो?

मैं— चाहता तो हूं देवि, पर जब तक भगवान के दर्शन नहीं हुए तब तक बीच में कहीं रुकना नहीं चाहता। बाद में अगर भगवान की आज्ञा होगी तो लौटते समय यहां ज़रूर रुकूंगा।

काफी दूर चलने पर दूसरा कोट नजर आया। उसके विशाल द्वार में प्रवेश करने पर भक्तिदेवी ने कहा—यहां सब गुणदेवों की बस्तियाँ हैं। विवेक दादा, सरस्वती, लक्ष्मी, शक्ति, कला, प्रेम, वत्सलता, दया, अनुभव, चिन्तन आदि सबके महल-मकान यहीं बने हुए हैं। मेरी भी कुटिया यहीं है। मानव-नगर या प्राणि-जगत् में जाकर हम लोग काम किया करते हैं, पर हमारा मूलस्थान यहीं है। यहाँ सबका समन्वय है। मानव-नगर में जाकर हमारे कामों से

लोग भ्रम में पड़ जाते हैं, पर यहां सबमें सहयोग रहता है। देखो! उस उपवन में, सरस्वती और लक्ष्मी किस तरह हाथ से हाथ मिलाये चहल-कदमी कर रही हैं। जब कि दुनिया में लोग इन्हें एक दूसरे की सौत समझते हैं। सत्यलोक में आने पर किसी में विरोध नहीं रहता। समन्वय का ही यहां दौर-दौरा है।

सचमुच मैंने सरस्वती और लक्ष्मी देवी को हाथ से हाथ मिलाकर चहल-कदमी करते देखा। मैंने उन्हें प्रणाम भी किया। सरस्वती मां ने दूर से ही हँसकर आशीर्वाद दिया। और फिर वे लक्ष्मी देवी से मेरे विषय में कुछ चर्चा करने लगीं, पर मैं सुनने के लिये ठहर न सका मुझे भगवान का दर्शन करना था।

इसके बाद तीसरा कोट दिखाई दिया जो कि पहिले दो कोटों से भी अधिक चमकदार था और जिसका दरवाजा भी पहिले दो दरवाजों से अधिक शानदार था। भक्ति-देवी ने कहा इसी के भीतर सत्येश्वर-धाम है। द्वार पर पहुँचकर मैंने तीन बार सिर झुकाकर वन्दना की और फिर आगे बढ़ा। इस समय भय-मिश्रित अपूर्व आनन्द मुझे हो रहा था। भक्ति-देवी की उँगली मैंने जोर से पकड़ रक्खी थी।

इसके बाद मुझे एक ऐसा महल दिखाई दिया जैसा मैंने कभी न देखा था और न जिसकी मैं कल्पना कर सकता था। प्रकृति सारे साज सजाकर वहां दासी बनी बैठी थी। यही था सत्येश्वर धाम।

भीतर प्रवेश करने पर मुझे दो दिव्य सिंहासन दिखाई दिये

जिन पर भगवान सत्य और भगवती अहिंसा विराजमान थे। मैंने दोनों के चरणों में सात-सात बार प्रणाम किया। प्रणाम करके मैं जमीन पर बैठ गया। भक्ति-देवी मेरे साथ थीं। मैं भय आनंद संकोच लज्जा के मारे चुप था। इतने में भक्ति-देवी ने कहा—यह आपके दर्शनों के लिये आया है, आपका आशीर्वाद चाहता है?

सत्येश्वर ने कहा—और क्या चाहता है?

इस समय तक मैंने अपने को सम्हाल लिया था। मैंने अपनी माँगें व्यवस्थित कर ली थीं। सत्येश्वर का प्रश्न सुनकर मैंने उन्हें प्रणाम कर कहा—मैं चार याचनाएँ करना चाहता हूं। (१) आपके दर्बार के दर्शन, (२) जब जब मैं आपके चरणों में आना चाहूं तब तब आ सकने का अधिकार, (३) आपके सन्देश-वाहक बनने की योग्यता, (४) आपके भक्त का पद।

सत्येश्वर—ठीक है। तेरी चारों याचनाएँ पूरी की जायँगी। एक पहर के बाद दर्बार भरेगा उस समय तुझे हाजिर होने का मौका दिया जायगा। भक्ति तेरे साथ रहा करेगी। मानव-नगर में काम करते करते जब तू घबरा जायगा तब भक्ति तुझे मेरे पास पहुँचा दिया करेगी। सन्देशवाहक बनने के लिये जो जो तुझे करना है-वह सब बता दिया जायगा और आज से तू मेरा भक्त माना जायगा, तेरा नाम भी अब **'सत्यभक्त'** होगा।

यह सुनकर मैंने आनन्द से गद्गद होकर भगवान और भगवती के चरणों में बार बार प्रणाम किया। इतने में भगवती ने विनोद में कहा—क्यों रे! तू भगवान का तो भक्त बन गया पर भगवती का क्या बना?

मैं– आपका साधक बना बड़ी मां, भगवान की भक्ति और आपकी साधना में अलग अलग नहीं समझता। वे तो एक ही सिक्के के दो बाजू हैं, एक के भी न होने पर सिक्का बेकाम हो जाता है। आशीर्वाद दो बड़ी मां, कि मैं आपके चरणों की साधना करके भगवान की भक्ति को सफल बना सकूं।

इतना कहकर मैंने भगवती के चरणों में फिर प्रणाम किया उनने मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया—'कर्मयोगी हो बेटा'।

इसके बाद फिर मैंने सत्येश्वर के चरणों में प्रणाम किया उनने भी सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया–'तारक-बुद्ध हो बेटा'।

(४)

भगवान भगवती की वन्दना करके भक्ति-देवी के साथ मैं लौटा और गुणदेव द्वार के बाहर अपने विश्रामस्थान पर आ गया। द्वार के बाहर कुछ भवन बने हुऐ थे जहाँ मुझ सरीखे दर्शनार्थी ठहराये जाते थे। यहीं से थोड़ी दूर पर तारक-बुद्धों और कर्मयोगियों के भवन बने हुए थे। एक पहर का समय था इसलिये क्षणभर को विचार हुआ कि क्यों न कुछ तारक बुद्धों से मिल लूँ। पर भगवान के दर्बार के दर्शन करने की उत्सुकता इतनी थी कि अगर मैं तारक बुद्धों से मिलता तो पूरे दिल से और पूरी निश्चिन्तता से बात ही न कर सकता। इसलिये वह समय मैंने भक्ति-देवी के साथ ही बिताया। इसी समय प्रेम-देव दया-देवी आदि अनेक गुण-देव भी मेरे ठहरने के स्थान पर आ गये। मालूम हुआ कि भगवान के दर्बार में हाजिर होने के लिये सभी गुण देव पधार

रहे हैं। तारक बुद्ध आदि सभी व्यक्ति देव भी दर्बार में जानेकी तैयारी में हैं।

दर्बार में एक साथ सभी के दर्शन हो जायँगे यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

जब मैं दर्बार में पहुँचा तब दर्बार भर रहा था। बीचमें सर्वोच्च स्थानपर भगवान सत्य और भगवती अहिंसा के लिये सिंहासन रक्खा हुआ था जो कि इस समय खाली था। सिंहासन से कुछ निचाई पर सिंहासन के दोनों ओर छोटे छोटे सिंहासनों की श्रेणियाँ सजी हुई थीं जो कि इस समय करीब करीब खाली थीं। इन दोनों श्रेणियों के बाद कुछ निचाई पर और भी कई श्रेणियाँ थीं जो कि बहुत कुछ भरी हुई थीं इन पर हजारों व्यक्ति देव आराम से बैठे हुए थे। बीच में विशाल चौक था। सजावट सुगंध आदि इतनी असाधारण थी कि मनुष्य तो उस की कल्पना भी नहीं कर सकता; वर्णन तो करेगा क्या?

प्रवेश-द्वार के बाद उसी विशाल चौक में एक तारफ कुछ आसन बिछे हुए थे जिन पर मुझ सरीखे दर्शनार्थी आकर बैठा करते थे। उस दिन मैं अकेला ही था। आज का दर्बार पृथ्वी ग्रह के उपलक्ष में था, इसलिये पृथ्वी के मानव नगर से आये हुये व्यक्ति देव आदि ही उपस्थित हुए थे। मंगल आदि असंख्य ग्रह इस ब्रह्मांड में हैं उनके काम के लिये भी दर्बार भरा करता है उस समय उन ग्रहों के व्यक्ति देव दर्बार में आते हैं।

इस प्रकार सत्येश्वर के दर्बार का सम्बन्ध सारे ब्रह्मांड से है। अनेक वर्षों के बाद पृथ्वी के काम के लिये दर्बार भरने का नम्बर

आता है ।

उपस्थित व्यक्ति देवों में से मैंने राम, कृष्ण, पार्श्वनाथ, महावीर, बुद्ध, जरथुस्त, ईसा, मुहम्मद को जल्दी ही पहिचान लिया। कार्लमार्क्स को पहिचानने में भी दिक्कत न हुई, कन्फ्यूसियस को अंदाज से ही पहिचान पाया। बहुतों को नहीं पहिचान पाया। पर मैंने सब को प्रणाम किया।

इनके ऊपर गुण देवों की आसन श्रेणियाँ थीं अभी तक वे खाली थीं, खासकर आगे की पंक्ति खाली थी पीछे की श्रेणियाँ भरी हुई थीं पर उन पर कुछ भद्दी शक्ल की मूर्त्तियाँ बैठी हुई थीं। पुरुषों की तरफ बैठे हुए थे मोह, क्रोध, अहंकार, लोभ, भय, आदि। स्त्रियों की तरफ बैठीं हुईं थीं माया, तृष्णा, उपेक्षा आदि। ये दुर्गुणदेव देवियाँ यहाँ बिलकुल शान्त थीं। पर इन्हें देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, मैंने सोचा—क्या भगवान के दर्बार में इन दुर्गुण देव देवियों को भी जगह है ? पिछली जगह ही सही, पर क्या है !

मैं मन ही मन यह सब सोच ही रहा था कि गुण देवियाँ आती हुईं दिखाई दीं। बीच में सरस्वती थीं उनने एक हाथ से शक्ति देवी का और दूसरे हाथ से लक्ष्मी देवी का हाथ पकड़ रक्खा था। लक्ष्मी के ही बगल में कलादेवी थीं। चारों सगी बहिनों की तरह दिल खोलकर हँसतीं हुईं आती रही थीं। सरस्वती सब की जीजी थीं, आकर के सब अपने अपने स्थानों पर बैठ गईं। उन के पीछे और भी अनेक देवियाँ, वाणी लिपि आदि उन की दासी देवियाँ भी थीं। उन के आते ही सब व्यक्ति देवों ने और दुर्गुण देवों ने भी उठकर उन का सन्मान किया। सब यथास्थान अपने अपने आसनों पर

बैठ गईं। इसी समय दूसरी तरफ से गुणदेव आते हुए दिखाई दिये। आगे आगे विवेक थे जो एक हाथ से विज्ञान का दूसरे हाथ से प्रेम का हाथ पकड़े हुए थे। इन के साथ में और भी अनेक गुण देव थे। और अनेक दास देव उनके पीछे पीछे थे। इन के आने पर भी समस्त व्यक्ति देवों और दुर्गुण देवों ने उठकर इनका सन्मान किया। सब के यथास्थान बैठ जाने पर क्षणभर पूर्ण शान्ति रही, फिर न जाने कहां से एक मनोहर संगीत ध्वनि सुनाई पड़ी इतनी कोमल इतनी मधुर, जिसे सुनकर सारा ब्रह्मांड झूम जाय। मुझे ऐसा मालूम हुवा कि सारा दर्बार झूम रहा है और मैं भी झूम रहा हूं। इतने में अकस्मात्-वह ध्वनि बन्द हुई मानों सब जाग पड़े हों इस प्रकार ध्वनि के बन्द होते ही सारा दर्बार उठकर खड़ाहो गया। मैं भी सिर झुका-कर खड़ा हो गया। इतने में सारा दर्बार एक अनिर्वचनीय प्रकाश-पुंज से भर गया। मुझे ऐसा मालूम हुवा कि मैं प्रकाश के समुद्र में डूबा हुवा हूं। चारों तरफ प्रकाश के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं देता था।

कुछ क्षण इसी अवस्था में बीते फिर एक जयघोष हुआ 'भगवान भगवती की जय'।-प्रकाश कुछ धीमा हुआ। मैंने देखा कि सामने सर्वोच्च सिंहासन पर भगवान भगवती बैठे हुए हैं। उनके पीछे भक्तिदेवी खड़ी हैं। मैं परमपिता और जगदम्बा को साष्टांग प्रणाम करके फिर खड़ा हो गया। जब दर्बार के सब लोग प्रणाम करके अपनी अपनी जगह बैठ गये तब मैं भी बैठ गया। मैं उत्सुक था कि देखें अब क्या होता है।

इतने में बारी बारी से सभी गुणदेव उठे और भगवान भग-

वती को प्रणाम करके अपनी अपनी भेंटें चढ़ाने लगे। विवेक ने एक ऐसी दुरबीन चढ़ाई जिसके द्वारा हरएक चीज के अच्छे बुरे अंश भीतर से पूरे रूप में देखे जा सकते थे। सरस्वती देवी ने कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथ चढ़ाये। विज्ञान ने आविष्कारों का थाल चढ़ाया, हवाई जहाज रेलगाड़ी रेडियो आदि सैकड़ों आविष्कार उस थाल में रक्खे थे। यश ने सफेद फूल चढ़ाये, प्रेम ने एक ऐसा डब्बा चढ़ाया जिसमें दो दिलों को चिपकाने वाला मसाला था। शक्ति-देवी ने अपनी गदा भगवती के चरणों में रख दी, लक्ष्मी ने अन्न-वस्त्र और सुवर्ण से भरा हुआ थाल चढ़ाया। कला देवी ने एक चित्र चढ़ाया जिसे मैं देख न सका, वाणी ने एक बाजा चढ़ाया, लिपि ने एक कलम चढ़ाई, और भी बहुतों ने अपने अनुरूप भेंटें चढ़ाईं। और भगवान भगवती को प्रणाम करके सब अपने अपने स्थान पर बैठ गये।

बाद में कला देवी का पृथ्वी-नाट्य नृत्य हुआ। नृत्य कैसा था इसे न तो लेखनी लिख सकती है न वाणी कह सकती है। सारा दरबार हिल उठा था। नृत्य में पृथ्वी के सुख दुःख का इतिहास था।

नृत्य के प्रारम्भ में पृथ्वी-रूप-धारिणी कलाने फूल-देवी की तरह शृंगार किया था। इतने में उन्हें एक मानव शिशु मिला, इस सुन्दर और बुद्धिमान बच्चे को पाकर बधाई का नाच दिखाया, मानवशिशु सत्येश्वर के चरणों में चढ़ाई गई सारी भेंट उठा लाया और उसने पृथ्वी के हाथों में देदी, तब पृथ्वी ने विलास नृत्य किया। इसके बाद मानवशिशु पागल हो गया, उसने आविष्कारों को उ-

ठाकर अपने को और पृथ्वी को मारना शुरु किया, इस समय पृथ्वी ने अशान्ति नृत्य शुरु किया। मानव ने सारा अन्न फेंक दिया पुस्तक उठाकर पृथ्वी को मारी, फूल मसल दिया, लेखनी को बर्छी की तरह पृथ्वी के शरीर में चुभा दिया, बाजे की आवाज ऐसी बिगाड़ दी कि वह भर्राने और गर्जने लगा। थोड़ी देर बाद पृथ्वी का सारा शरीर खून से लथ पथ हो गया इस के बाद पृथ्वी ने बहुत ही करुण विलाप किया, और साथ ही वेदना नृत्य किया। और यहीं नृत्य की समाप्ति हुई।

ओह ! प्रत्येक अवस्था में कला देवी की भावभंगी कितनी स्वाभाविक और हृदय-स्पर्शी थी कि सारे दर्बार के दिल डोलने लगे थे। जब उनने वेदनानृत्य और विलाप किया तब समस्त व्यक्तिदेवों की आंखों से झार झार आंसू बहने लगे। समस्त गुणदेव स्तब्ध होकर रह गये। मैं सारी सुधबुध भूलकर रोता हुआ छाती दबाकर सिकुड़ गया। मैं डरा कि शोक के आवेग के कारण छाती फट न जाय। उस दिन मैं समझा कि कलादेवी की महत्ता क्या है ? कोमल होने पर भी वे किस तरह संसार के हृदयों को अपनी मुट्ठी में दबा सकती हैं।

कला देवी भगवान को नमस्कार करके अपने आसन पर जा बैठीं। कुछ देर तक बिलकुल निस्तब्धता रही, इतने में विवेक-दादा उठे। उनने भगवान से कहा—पिताजी, पृथ्वी की आज जो दुर्दशा है वह कलादेवी के नृत्य ने बतला दी है, वहां का श्रेष्ठ प्राणी मनुष्य, विज्ञान की देन को झेल नहीं पाया है, लक्ष्मी की देन से पागल हो गया है, सरस्वती की देन ने उसे घमंडी बना

दिया है कला की देन ने उसे विलासी बना दिया है।

भगवान ने गम्भीर स्वर में कहा—अवश्य। पुराने सन्देशों को लोग भूल गये हैं और वे कुछ युग के प्रतिकूल भी होगये हैं। पृथ्वी का एक बच्चा यहां हाजिर है वह पृथ्वी की तरफ़ से कुछ कहेगा, उसपर विचार करके यहां से सन्देश भेजा जायगा।

भक्ति देवी के हाथ का इशारा पाकर मैं उठा और मैंने हाथ जोड़कर निवेदन किया—परम पिता, पूज्य कलादेवी ने पृथ्वी की दुर्दशा का जो चित्रण किया है वह यथार्थ है। विज्ञान देव के आविष्कारों से पुस्तकों की प्रतियों से, सोने चांदी से पृथ्वी भर गई है पर मनुष्य मनुष्य का दुश्मन हो गया है। ऐसे भयंकर युद्ध होते हैं जैसे पृथ्वी में कभी नहीं हुए। पन्द्रह बीस वर्ष पहिले ऐसा ही भयंकर युद्ध हुआ था करोड़ों आदमी मर गये थे पर अब भी वही हाल है, सब जगह फिर युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं वह युद्ध इससे भी भयंकर और व्यापक होगा। धन का संग्रह संकट काल के लिये है पर लोग उसे धन कमाने का ही जरिया बना रहे हैं, यहां तक कि एक देश दूसरे देश पर धन से आक्रमण करता है। रंग, राष्ट्र, प्रान्त, वंश, जीविका, आदि के भेद से मनुष्य के टुकड़े टुकड़े हो गये हैं। धर्मों के नाम पर खूब लड़ाई होती है। खासकर जिस देश से मैं आया हूं वहां तो धर्म का अर्थ ही है अन्धविश्वास, अहंकार और द्वेष। इस प्रकार मनुष्य मात्र तबाह हो रहा है परम पिता, अब आप की जो आज्ञा हो।

भगवान— तू मेरा सन्देश लेजाने को तैयार है ?

मैं– तैयार हूं परम पिता ! मैं इस काम में जीवन लगा दूंगा।

भगवान– अगर दस बीस वर्ष तक तेरी बात दुनिया ने न सुनी तो ?

मैं– अगर जीवन भर भी कोई न सुने तो भी कोशिश करता रहूंगा। जब तक आपका हुक्म न होगा तब तक मैं सन्देश सुनाना बन्द न करूंगा। आप के चरणों का ध्यान रखकर मैं असफलता में भी निराशा को न आने दूंगा।

भगवान– देख, मैं तुझे दुनिया पर शासन करने नहीं भेज रहा हूं, सिर्फ सन्देश देने भेज रहा हूं।

मैं– मुझे शासक बनने की इच्छा नहीं है परम पिता, मैं सिर्फ आपका सन्देश-वाहक बनना चाहता हूं। मेरे लिये तो सब से बड़ा पद आप का भक्त होना है।

भगवान– ठीक है, तेरा नाम आज से सत्यभक्त होगा। तेरी इच्छा भी यही है। जा ! दुनिया को विवेकी बनने का, धर्म-समभावी जाति-समभावी व्यक्ति-समभावी और अवस्था-समभावी बनने का सन्देश दे। देश प्रान्त कुल जाति के काल्पित भेद नष्ट करने का, अपूरक विशेषताओं को मिटा डालने और पूरक विशेषताओं तथा समानताओं को लाने का सन्देश सुना। दुनिया से कह दे कि जब तक लोग अपनी शक्ति सम्पत्ति आदि अहिंसा-देवी के चरणों में समर्पित न कर देंगे तब तक वे इनके वरदानों से लाभ न उठा सकेंगे, वे सुखी न हो सकेंगे।

मैं– जो आज्ञा।

इतने में भगवती ने कहा—देख सत्यभक्त, तू दुनिया से कह कि जहां सत्येश्वर हैं वहीं मैं हूं। उनकी पर्वाह न करके मेरी उपासना करने वाले मूर्ख हैं, वे मुझे न पा सकेंगे। मेरे एक रूप को ही देखने वाले मेरा अंग-भंग करते हैं उन्हें मेरा आशीर्वाद न मिलेगा। जो मेरे नामपर ढोंग करते हैं वे अपने को ठगते हैं वे अपना जीवन बर्बाद करेंगे। मैं वेष में नहीं हूं, कोरे बाह्याचार में नहीं हूं, मैं विश्वसुख-वर्धन में और न्यायरक्षण में हूं।

मैं— जो जगदम्बा की आज्ञा।

मैंने साष्टांग प्रणाम किया और दर्बार बरखास्त हो गया।

(५)

मैं गुणदेव नगर की भक्ति कुटीर के दीवानखाने में बैठा हुवा था। मेरे सामने भक्ति देवी थीं और उन के दायें बायें बैठे हुए थे उनके दोनों छोटे भाई विनय और आदर। बात उठाते हुए भक्ति देवी ने कहा—सत्यभक्त, यहां का काम तो तुह्मारा पूरा हो गया अब तुम मानव नगर में कब काम शुरू करोगे?

मैंने कहा—आपके आशीर्वाद से असली काम तो हो गया फिर भी बहुतसा काम बाकी है। आते समय आपने पूछा था कि यहां तुम क्या तीर्थंकर पैगम्बर अवतार बुद्ध आदि से मिलना चाहते हो? उस समय भगवान के दर्शनों की उत्सुकता के कारण मैंने मना कर दिया था। पर अब मैं पांच सात व्यक्ति देवों से मिल लेना चाहता हूं।

भक्ति देवी—तुह्मारा यह विचार जरूरी है। जाने के पहिले तुम्हें भक्तनगर का चक्कर मार ही लेना चाहिये। पर क्या वहां भी मुझे

ही साथ चलना पड़ेगा ।

मैं—नहीं देवी, आपको तो भगवान भगवती के दर्शनों के समय ही कष्ट देना चाहता हूं यहां तो आप अपने किसी भाई को भेज दें तो भी काम चल जायगा ।

भक्ति—आदर को साथ दूं ?

मैं—देदीजिये । पर मेरी एक इच्छा और है । व्यक्ति-देवों से बात करते समय मैं जिज्ञासा देवी को भी साथ रखना चाहता हूं ।

भक्ति—तुम तो सचमुच विवेक दादा के पक्के चेले बन गये, बात तुम्हें बहुत अच्छी सूझी ।

मैं मुसकराने लगा ।

भक्ति देवी— पर जिज्ञासा तो तुम्हें सरस्वती-मन्दिर में मिलेगी । उन्हीं के द्वार पर वह रहती है ।

मैं— तो मैं उधर से ही होता जाऊंगा ।

भक्ति देवी— ठीक है, आदर का साथ है ही ।

मैं भक्ति-कुटीर से निकला सरस्वती मन्दिर के द्वार पर पहुँचा जिज्ञासा देवी खुशी से साथ देने के लिये राजी हो गई ।

आदर और जिज्ञासा के साथ मैं भक्त-नगर आया । वहां मैं राम-मन्दिर की तरफ बढ़ा ।

६

म. राम एक आसन पर बैठे हुए थे, सीताजी भी थीं। सम्भवतः आज के दर्बार के बारे में बातचीत हो रही थी । मेरे पहुँचते ही महात्माजी ने बड़े स्नेह से कहा—आओ भाई आओ, बैठो । तुम मानव-नगर में सन्देश-वाहक बनकर जाओगे इससे मुझे

बड़ी खुशी हुई। कुछ मैं वहां की बातें सुन लूंगा और कुछ अपनी बात भी कह दूंगा आशा है तुम मेरी बात भी मानव-नगर तक ले जाओगे।

मैं प्रणाम कर के एक आसन पर बैठ गया और बोला—जी हां, आपका सन्देश ले जाना मेरे लिये जरूरी भी है।

पर पहिले सुनू तो आजकल आर्यावर्त की क्या दशा है?

मैं—आपके जमाने से बहुत अन्तर हो गया है। आपने जो काम शुरु किया था वह तो एक तरह से कभी का पूरा हो गया पर उस के बाद नई नई अड़चनें पैदा हो गई हैं।

म. राम—सो तो ठीक ही है। एक आदमी की कोशिश अनन्त काल तक काम नहीं दे सकती। इसीलिये मेरे बाद भी बहुत से सन्देश-वाहक गये थे। हर दिन कचरा हुआ ही करता है और झाड़ू लगाने वाले लगाया ही करते हैं। पर यह तो बताओ, मेरा कौन कौन सा काम पूरा हुआ और कौन कौनसा अधूरा रहा?

मैं—आप के जमाने में उत्तर और दक्षिण भारत, आर्य और अनार्य शैव और वैष्णव का भेद जबर्दस्त था। आपने ही सब से पहिले इस भेद को मिटाने की कोशिश की और वह सफल हुई। शैव वैष्णव आदि धर्म मिलकर अब विशाल हिन्दू धर्म बन गया है, आर्य अनार्य के भेद नष्ट हो चुके हैं, नाग द्रविड़ आदि सब हिन्दुओं में समा गये हैं बल्कि अब सभी अपने को आर्य कहने लगे हैं।

म. राम - यह तो बहुत अच्छा हुआ। एक बड़ी भारी समस्या हल हो गई। मैं जाति और धर्म दोनों को मिलाना चाहता था। इसीलिये समुद्र किनारे शिव की पूजा की थी, अनार्यों से गहरी मित्रत

की थी। मुझ से पीछे जो सन्देश-वाहक गये थे उनने भी इसबारे में काफी काम किया।

मैं—जी हां, कई हजार वर्ष तक काम हुआ। इसी से बाद में जब शक, हूण आदि बहुसी जातियाँ भारतवर्षमें आईं तब बहुत जल्दी मिल गईं। लेकिन दुख है कि पिछले हजार वर्ष से आपका पढ़ाया हुआ पाठ लोग भूल गये हैं, इसीलिये जब मुसलमान लोग भारत में आये तो उनने तो हिन्दुओं को अपने में मिलालिया पर हिन्दू उन्हें अपने में न मिलापाये। इतना ही नहीं, किन्तु जिन हिन्दूओं को मुसलमानों ने अपने में मिलाया था उन हिन्दुओं से भी सम्बन्ध न रख सके। आज के अधिकांश मुसलमान मूल में हिन्दू हैं पर बिलकुल अलग पड़ गये हैं।

म. राम--मतलब कि मेरे जमाने के लोगों की अपेक्षा तुह्मारे जमाने के लोगों की मूर्खता अधिक बढ़गई है। खासकर हिन्दू काफी मूर्ख साबित हुए हैं।

मैं—जहां तक जातिपांति का सवाल है वहां तक तो काफी मूर्ख साबित हुए हैं।

म. राम—हाय री जातिपांति। पाप की बच्ची! इसने अभी तक इस देश का पिंड नहीं छोड़ा। मैं भी इसे पराजित न कर सका था। इसीलिय शूद्र के तपस्या करने पर मुझे उसका सर काटना पड़ा था।

मैं—पर आप के जमाने की वह समस्या दूसरी थी। बाजार में या आजीविका के क्षेत्र में सुव्यवस्था रखने के लिये जो कानून बनाये गये थे उनके पालन कराने के लिये आप बँधे थे। पर खान-

धान विवाह शादी से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था ।

म. राम--हां नहीं था पर पीछे हो गया था । पीछे के सन्देश-वाहकों ने इस बीमारी को हटाने की पूरी कोशिश की और वे सफल भी हुए पर अब कुछ और विकृत रूप में फैल गई है । इसी-लिये हिन्दू मुसलमान न मिल सके । पर आश्चर्य की बात तो यह है कि धर्म आदि के मामले में भी न मिल सके ।

मैं--हां, बहुत दिन तक नहीं मिल सके थे पर पीछे मिलने लगे थे ; अभी तक तो न जाने कितने मिलगये होते पर मुश्किल हुई कि भारतीयों का शासन भारतीयों के हाथ में न रहा, बाहर के लोग राज्य करने लगे और उनने दोनों को लड़ाने में ही अपना हित समझा ।

महात्माजी आश्चर्य में पड़गये और चकित होकर बोले-क्या कह रहे हो तुम ? राज्य करने वाला प्रजा को आपस में क्यों लड़ा-यगा । वह शासन करेगा पर लड़ायगा क्यों ?

मैं--क्या आप अपनी ही तरह दुनिया को समझते हैं ! आप सम्राट् थे पर आज के साम्राज्यवाद की कल्पना भी नहीं कर सकते थे । और आज सम्राट् नहीं हैं या नाममात्र को हैं पर साम्राज्यवाद ऐसे भयंकर रूप में है कि न जाने कितने रावण उस के आगे फीके पड़ जाँयगे ।

महात्माजी गम्भीर हो गये । विदेशी शासनों की ऐसी नीचता की वे कल्पना नहीं कर पाते थे । कुछ देर सोचकर उनने पूछा--क्या तुम समझते हो कि विदेशी शासन के कारण ही हिन्दू-मुसलिम-एकता नहीं होने पाती ?

मैं–यही कारण तो नहीं कहा जा सकता पर इसे मुख्य या काफी प्रबल कारण कहा जा सकता है। हां, हिन्दू मुसलमानों की नासमझी और उनके नेताओं की स्वार्थपरता भी इसका कारण है।

म. राम– हां, मुख्य कारण यही है। अपनी कमजोरी का दुनिया लाभ उठा सकती है। अपने में समझदारी हो तो पापी सफल नहीं हो पाते।

मैं– जी हां, आप का कहना बिलकुल ठीक है। अगर राम और सीता हों तो रावण कितने भी रहें वे सफल नहीं हो सकते।

म. राम– बिलकुल ठीक कहा तुमने। अगर हिन्दू-मुसलमान समझदार और ईमानदार हों तो बाहर के आदमी कुछ नहीं कर सकते। खैर! अब वहां सतीत्व का क्या हाल है?

मैं– सतीत्व के गीत तो गाये जाते हैं पर उसकी रक्षा नहीं हो पाती। विधवाओं की संख्या खूब बढ़ गई है पैसा उनके हाथ में है नहीं। इज्जत भी नहीं है। जमाना विलास का है इसलिये व्यभिचार खूब बढ़ गया है भ्रूण-हत्याएँ भी खूब होती हैं।

म. राम– मतलब यह कि अब घर ही में रावण पैदा होने लगे हैं।

मैं– जी हां, यही समझना चाहिये।

म. राम– पुनर्विवाह की प्रथा तो बिलकुल न होगी?

मैं– हां, स्त्रियों में नहीं है पर पुरुषों में है।

म. राम– क्या मतलब हुआ इसका? स्त्रियों के क्या हृदय नहीं है? बड़ा आश्चर्य है कि व्यभिचार को जगह है पर पुनर्विवाह

को जगह नहीं है ।

मैं— लोग कहते हैं कि स्त्रियाँ अगर पुनर्विवाह करें तो सीताजी का नाम डूब जायगा ।

म. राम— और पुरुष जब पुनर्विवाह करते हैं तब क्या मेरा नाम नहीं डूबता ? देखो सत्यभक्त, तुम जाकर कहो कि अच्छी बात तो यह है कि पुरुष और स्त्री एक विवाह का नियम लें, जो न ले सकें वे भले ही पुनर्विवाह करें पर जो कुछ अधिकार हो वह स्त्री पुरुष को बराबर हो । दाम्पत्य जीवन की पवित्रता स्त्री और पुरुष दोनों के सहयोग से रहेगी । खेद है कि आर्यावर्त में आज राज्य और घर दोनों की हालत खराब है ।

मैं— खराबी का कुछ न पूछिये । साम्राज्यवाद ने दुनिया को तबाह कर दिया है । लोग बुरी तरह पैसे के गुलाम हो गये हैं, कृतघ्नता बढ़ गई है, मां बाप को कोई नहीं पूछता, स्त्रियों की इज्जत विलासिनी के रूप में है सहधर्मिणी के रूप में नहीं ।

सीताजी— राज दर्बार में रानी का क्या स्थान है ?

मैं— राज दर्बार हैं कहां ! जो हैं, वे विदेशी शासकों की कठपुतलियाँ हैं । राजा लोग प्रजा को खुश नहीं रखना चाहते विदेशी दूतों को खुश रखना चाहते हैं । प्रजा की आवाज का कोई मूल्य नहीं है । और स्त्रियों की दुर्दशा की तो बात ही न पूछिये वे तो विलास की सामग्री हैं । अब राजदर्बार में रानियों का क्या काम !

म. राम— मतलब यह कि मेरा वंश डूब गया । अब मेरा नाम लेने वाला कोई नहीं हैं ।

मैं-- नाम लेने वाले तो बहुत हैं पर उस नाम का अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है। सच्चे अर्थों में आप का वंश डूब ही गया है।

म. राम-- समाचार अच्छे तो नहीं हैं सत्यभक्त, पर जो करेगा सो भरेगा। जो कुछ मुझसे हो सका मैंने किया जो दूसरों से हो सका वह दूसरों ने किया जो तुमसे बन सके वह तुम करो। मेरी तरफ़ से भी कुछ बातें कह देना।

मैं-- आप जो कहें वह कह दूंगा।

म. राम-- क्या कहूं? जो कुछ कहना है वह तुम खुद समझ सकते हो। फिर भी कुछ बातें मैं अपने मुँह से कहे देता हूं। खास खास बातें ये हैं।

१-- कहो कि जैसे मैंने आर्य अनार्य का जातिभेद मिटाने की कोशिश की थी उसी तरह लोग हिन्दू मुसलमान आदि का भेद मिटाने की कोशिश करें।

२-- कहो कि जैसे मैंने वैदिक-धर्म शैव-धर्म आदि को मिलाने की कोशिश की, दूसरों के देव को विशेष महत्व दिया, शिव मूर्ति की स्थापना करके अनार्यों का दिल जीता, उसी तरह लोग दूसरे के धर्मों का आदर करें उन्हें अपनाएँ।

३-- शासकों से कहो कि वे प्रजा की इच्छा के विरुद्ध एक पलभर भी शासन न करें। प्रजा की इच्छा न हो तो गद्दी छोड़ दें।

४-- साम्राज्य मानव-साम्राज्य के ढंग का बनावें, दूसरे देशों की प्रजा को लूटने लड़ाने और अपमानित करने के लिये

नहीं ।

५– स्त्रियों की पूरी इज्जत करें । सतीत्व की रक्षा के लिये मर मिटें । याद रखें कि मनुष्य की सभ्यता का पता स्त्रियों के साथ किये गये सद्व्यवहार से लगता है ।

६– माता पिता की पूरी सेवा करें । अपने जीवन का बलिदान करें पर उन्हें न सतायें ।

७– घर में लड़ाई झगड़े न करें । अगर ऐसा मौका आजाय तो फकीरी भले ही अपनालें पर धन पैसे के लिये भाई भाई न लड़ें । इसीलिये मैंने भरत को राज्य देकर वनवास ले लिया था पर गृह-कलह नहीं होने दिया था ।

८– असभ्य जातियों को सभ्य बनायें पर न तो उन्हें लूटें न छोटा समझें । उनकी सेवा करें सन्मान करें छाती से लगायें ।

९– राजाओं से कहो कि वे घमंडी और विलास के कीड़े न बनें । कर्मठ बहादुर विनीत और सेवक बनें ।

१०– कहो कि जीवन का आनन्द प्रेम में है वैभव से लद जाने में नहीं । पंचवटी में मैं जितना सुखी रहा उतना राजगद्दी पर बैठने पर नहीं रह सका । लोग सुख की खोज के लिये बाहर ही न दौड़ते फिरें भीतर भी खोजें और अधिक खोजें ।

११– बहादुर बनें । कायर लोग धर्म की रक्षा नहीं कर सकते ।

१२– शक्ति को सत्येश्वर की दासी बनाकर रक्खें । जिससे वह न्याय के विरुद्ध न जा सके ।

मैं– आप की ये बातें मैं अवश्य मानव नगर में सुनाऊंगा ।

आपके दर्शनों को मैं अपना सौभाग्य समझता हूं। आज्ञा हो तो अब चलूं!

म. राम–हां! हां! जाओ। मुझे तुमसे मिलकर बहुत खुशी हुई।

मैं उठा, मैंने म. राम को प्रणाम किया सीताजी को प्रणाम किया और बैठक के बाहर हो गया।

(७) सत्यलोक की रूप रेखा

राम-मन्दिर से निकलकर जब मैं कृष्ण-मन्दिर की ओर चला तब रास्ते में मैंने जिज्ञासा-देवी से पूछा–मैंने पूरा राम-मन्दिर तो देखा ही नहीं, सिर्फ महात्माजी से मिलकर चला आया हूं।

जिज्ञासा–पूरा राम-मन्दिर तो एक रामनगर ही है। जिसमें हजारों रामभक्तों के भवन बने हुए हैं। जो कि असीम काल तक अर्थात् जब तक म. राम हैं–तब तक सत्यलोक का आनन्द लेते रहेंगे। तुम भीतर जाते तो वहां पहिले तुम्हें हनुमान-गुफा मिलती; वहीं लक्ष्मण निकेतन, भरताश्रम, विभीषण-धाम आदि हजारों भवन हैं।

मैं–तब क्यों न वहां एक चक्कर मारा जाय?

जिज्ञासा– इतना समय नहीं है भाई! ऐसा करोगे तो राम-मन्दिर में ही तुम्हारी जिन्दगी पूरी हो जायगी। फिर कृष्ण-मन्दिर में जाओगे तो अर्जुन-धाम आदि देखने में लग जाओगे, इसी प्रकार महावीर-मन्दिर में इन्द्रभूति-सदन आदि गणधरों के निवास, बुद्ध-मन्दिर में सारिपुत्र मौद्गल्यायन अशोक आदि के भवन, यीशु-मन्दिर में मत्ति आदि के भवन, मुहम्मद-मन्दिर में उमर आदि की कुटियाँ, आखिर कहां तक देखोगे? तुम्हें खास-खास व्यक्ति-देवों से मिलकर मानव-नगर जाना है, तुम्हारे पास इतना समय कहां है?

मैं– ठीक कहा देवि आपने, मैं ख़ास-ख़ास व्यक्ति-देवों से ही मिलूंगा। पर, क्या इस भक्तनगर या सत्यलोक का रेखा-चित्र बता सकेंगी?

जिज्ञासा– रेखा-चित्र भी पूरा बताना जिन्दगी भर का काम है। मानव-नगर की यह मुख्य सड़क जिस पर से अपन चल रहे हैं कितनी लम्बी है? कोई नहीं जानता। करोड़ों अरबों प्रकाश-वर्ष से भी अधिक लम्बी है। इस सड़क के दोनों तरफ़ मुख्य-मुख्य व्यक्ति-देवों के मन्दिर हैं, जैसे राम-मन्दिर आदि। पर इन मन्दिरों के पिछवाड़े सैकड़ों कोसों में छोटी-छोटी सड़कों के किनारे हजारों भवन बने हुए हैं, जिनमें व्यक्ति-देवों के साधक-उपकुटुम्बी जैसे– लक्ष्मण, हनुमान, बिभीषण, अर्जुन, इन्द्रभूति, सारिपुत्र, मत्ति, उमर आदि रहते हैं। ज्यों ज्यों इनके कुटुम्ब बढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों इनके लिये सत्येश्वर की आज्ञा से भवन बनते जाते हैं।

मैं– व्यक्ति देवों और उनके भक्तों का कैसा सम्बन्ध रहता है? क्या उसी तरह जिस तरह मानव-नगर में था?

जिज्ञासा– बिलकुल वैसा तो नहीं, फिर भी उसका काफ़ी ख़याल रक्खा जाता है। असली चीज़ साधना और भक्ति है।

मैं– अगर किसी का स्थान मानव-नगर में कुछ ऊँचा रहा हो या उसने लौकिक परिस्थितियों के कारण अपना स्थान ऊंचा बना लिया हो, पर साधना और भक्ति में उतना बड़ा न हो तो उसका स्थान क्या होगा?

जिज्ञासा– जिसकी जैसी साधना और भक्ति होगी वैसा ही स्थान होगा। जैसे, राम-मन्दिर में राम-सीता के बाद लक्ष्मण और

हनुमान का स्थान है। भरत विभीषण आदि का उनके बाद है। कृष्ण-मन्दिर में कृष्ण के बाद अर्जुन का ही नम्बर है।

मैं– क्या मानव-नगर में व्यक्तिदेवों के जितने साथी होते हैं–वे सब सत्यलोक में आकर उनके मन्दिरों में जगह पाते हैं?

जिज्ञासा-- नहीं। जिनका अहंकार मर गया होता है, जो पूर्ण साधक, निःस्वार्थ और कृतज्ञ होते हैं–वे ही आते हैं! जमालि देवदत्त यहूदा आदि को यहां जगह नहीं मिलती—वे अधोलोक में जाते हैं।

मैं– व्यक्तिदेव और व्यक्तिदेव-भक्तों के आनन्द में तो अन्तर रहा ही। सत्यलोक में आने पर भी वे पूर्ण आनन्द तो नहीं पा सके?

जिज्ञासा—आनन्द में कोई अन्तर नहीं होता। बच्चा जब मां की गोद में बैठता है, तब मां की अपेक्षा बच्चे को कम आनन्द नहीं होता। भक्ति का आनन्द वात्सल्य के आनन्द से कुछ अधिक ही होता है, कम तो होता ही नहीं। कुटुम्ब में बेटा इसलिये दुखी नहीं होता कि "हाय! मैं बेटा क्यों हूं?" जो ईर्षा और प्रतिस्पर्द्धा लोगों को दुखी करती है--वह सत्यलोक में नहीं है। ऐसे लोग सत्य-लोक में आ ही नहीं सकते। इसीलिये यहां, राम के सुख और राम-भक्त हनुमान के सुख की मात्रा में कोई अन्तर नहीं है।

मैं -अगर म. राम हनुमान से नाराज हो जायँ और वे सत्यलोक से उन्हें निकालना चाहें तो?

जिज्ञासा—अगर असंभव बातों का अजायबघर बनाया जाय तो सत्यलोक-वासियों में किसी की किसी पर नाराजी होना उन्हीं में से

एक बात समझी जायगी। यह हो नहीं सकता कि कोई व्यक्तिदेव सत्यलोकवासी अपने भक्त पर नाराज हो जाय। वह उसे सदा अपने बेटे से भी प्यारा होता है। पर, अगर तुम्हारे कहने के अनुसार ऐसी घटना हो भी जाय तो व्यक्तिदेवों को यह अधिकार नहीं है कि वे किसी को—अपने भक्त कहलानेवाले को भी सत्यलोक से निकाल सकें। सत्येश्वर के सिवाय और किसी के वश में यह सब नहीं है। तुम मानव-नगर निवासी हो, इसलिये अभी तुम्हारे मन में ऐसी शंकाएँ उठती हैं, पर जब तुम यहां आ जाओगे तब ये सब संकल्प-विकल्प तुमसे कोसों दूर चले जायँगे।

एक असीम आनन्द, एक असीम सन्तोष मेरे हृदय में भर रहा था। मैं सोचने लगा कि 'सत्येश्वर की यह कैसी सुव्यवस्था है—स्वर्ग से भी ऊँची, मुक्ति से भी अधिक दिलचस्प! मुक्ति क्या है, संसार का आदर्श और स्थायी रूप। मानव-नगर में अनेक कल्पनाएँ मुक्ति के बारे में घूम रही हैं, पर ऐसी कल्पना तो एक भी नहीं मालूम होती।'

मैं यह सब सोच ही रहा था कि जिज्ञासा ने पूछा—क्या उधेड़बुन कर रहे हो भाई!

मैंने कहा-- अपने सन्तोष को भर-पेट भोजन दे रहा हूं देवि!

जिज्ञासा— तुम कवि भी अच्छे मालूम होते हो।

मैं— जब सत्यलोक तक आ सका हूं तब कवि होना कौन बड़ी बात है? 'जहां न पहुँचे रवि, वहां पहुँचे कवि' सत्यलोक तक रवि आ ही नहीं सकता; जहां तक कि मैं आ गया हूं।

जिज्ञासा– ठीक कहा तुमने, यहां रवि नहीं आ सकता यहां उसकी ज़रूरत भी नहीं है। न जाने कितने सूर्य और सौर-जगत् इस सत्यलोक में समा जायँगे !

सत्यलोक की विशालता का ख़याल आते ही मैंने पूछा– सत्यलोक में भक्त-नगर कितना बड़ा है ?

जिज्ञासा– यहां भक्त-नगर असंख्य हैं, और उनमें से प्रत्येक की लम्बाई जुदी-जुदी है। पृथ्वी ग्रह का भक्त-नगर क़रीब बारह हज़ार कोस लम्बा है। जिस दरवाजे से तुमने आते समय सत्य-लोक में प्रवेश किया था, वहां से छः हज़ार कोस पश्चिम में और छः हज़ार कोस पूर्व में। इसके आगे कुछ शून्य स्थान छोड़कर अन्य ग्रहों के भक्त-नगर हैं। इस प्रकार असंख्य भक्त-नगरों का, अर्बों प्रकाश-वर्ष लम्बा विशाल वलय बना हुआ है, उससे घिरा हुआ गुणदेव-नगर है और उसके भी बीच में है--सत्येश्वर धाम।

इतने में कुछ दूर से बड़ी मधुर बांसुरी की आवाज सुनाई दी। जिज्ञासा देवी ने कहा–लो भाई, कृष्ण-मन्दिर तो आ गया। मैं जाकर कृष्ण-मन्दिर के द्वार पर खड़ा हो गया।

(८) म. कृष्ण के दर्शन

दरवाजे पर खड़ा खड़ा थोड़ी देर तक मैं बाँसुरी की आवाज़ ही सुनता रहा। बजते बजते बाँसुरी रुक गई और भीतर से आवाज़ आई—अरे भाई, बाहर क्यों खड़े हो भीतर आओ न !

मैं भीतर गया और योगेश्वर को प्रणाम किया। उनने हँसते हुए कहा—हूं, तो तुम अभी यहीं सैर कर रहे हो ! मानव नगर नहीं जा रहे हो !

जी, जाने की तैयारी तो है, पर भक्तों के दर्शन किये बिना जाने से तो काम अधूरा ही रहेगा।

ठीक है, आखिर तुम्हें सब भक्तों के भक्तों को मिलाना है। काम तो बहुत बड़ा उठाया है भाई ! देखें कितनी सफलता मिलती है ?

मैं– सफलता के बारे में तो क्या कह सकता हूं। सिर्फ उस काम में जीवन लगाने की ही बात कह सकता हूं।

श्रीकृष्ण– कर्मयोग का अमृत तुम्हें पच गया मालूम होता है!

मैं– यह सब आप की दया है।

श्रीकृष्ण मुसकराकर बोले– हां, थोड़ी बहुत तो है ही, पूरी तरह इनकार तो नहीं किया जा सकता। पर दया देने में है 'पचाने' में नहीं। पचाना अपनी अपनी योग्यता पर निर्भर है।

मैं मुसकराता हुआ चुप रहा। तब म. कृष्ण बोले–अच्छा मानव-नगर की कुछ राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक बातों के हाल-चाल सुनाओ!

मैं– क्या पूछते हैं, आये दिन महाभारत होते रहते हैं!

श्रीकृष्ण– तो आये दिन द्रौपदियों के चीर भी खिंचते होंगे, और आये दिन दुर्योधन और दुःशासन भी पैदा होते होंगे ?

मैं– दुर्योधनों और दुःशासनों की बात न पूछिये ! वैज्ञानिक आविष्कारों ने और साम्राज्यवाद ने हर जगह दुर्योधन और दुःशासन पैदा कर दिये हैं और अब एकाध द्रौपदी का चीर नहीं खिंच रहा है! अब तो अनेक देशों की सारी प्रजा द्रौपदी बनी हुई है!

श्रीकृष्ण– और पांडव कहां हैं ?

मैं– पांडवों का तो कहीं पता नहीं है, न जाने उनका वन-

वास या अज्ञातवास कब पूरा होगा ? और फिर श्रीकृष्ण के बिना पांडव कर ही क्या सकते हैं ? श्रीकृष्ण का तो पता ही नहीं है !

श्रीकृष्ण– ठीक है ! मामला कुछ बढ़चढ़कर है । द्रौपदी भी जब एक नहीं है, दुःशासन और दुर्योधन भी जब असंख्य हैं तब मामला कुछ लम्बा जायगा । कृष्ण देर से आयगा पांडवों का अज्ञातवास भी देर से पूरा होगा । महाभारतों की कई पुनरावृत्तियाँ होंगीं ।

मैं– सो तो हो चुकी हैं पर एक महाभारत तो ऐसा हुआ जैसा इस पृथ्वी-ग्रह पर मानव आने से लगाकर आज तक कभी नहीं हुआ । फ्रान्स और जर्मनी की सीमा पर तीन-सौ मील की लम्बाई में चार वर्ष तक चलता रहा, जिसमें करोड़ों आदमी काम आये । फिर भी इससे किसी की अक्ल ठिकाने नहीं आई । अब दूसरे महायुद्ध की तैयारी* हो रही है--इसमें शायद सारी दुनिया सन जायगी ।

श्रीकृष्ण– सारी दुनिया सन जायगी फिर भी अक्ल न आयगी । जिनके हाथ में सत्ता है उन्हें महाभारतों से भी अक्ल नहीं आती । जिस दिन दुनिया की प्रजा समझना चाहेगी उसी-दिन अक्ल आयगी । मेरे जमाने के महाभारत से यद्यपि एक अन्यायी घटना का प्रतीकार हुआ था पर अक्ल किसी को न आई थी । धृतराष्ट्र अन्त तक अक्ल का अंधा बना ही रहा था । तुम्हारे जमाने में अब सारी दुनिया पास पास आ गई है इसलिये जब अक्ल

* सत्यलोक की यह यात्रा इतिहास-संवत् ११९३४ के पहिले की गई थी, उस समय यह दूसरा महायुद्ध चालू नहीं हुआ था ।

आयगी तब सभी को आयगी। इसलिये सारी दुनिया की जनता को न्याय और शान्ति की बात सिखाओ ! राष्ट्रीयता की दीवारें भी अब मिटाओ ! तभी अक्ल आयगी।

मैं— आप ठीक कहते हैं, पर हिन्दुस्तान में राष्ट्रीयता की दीवारें तो क्या, छोटी छोटी कौटुम्बिक दीवारें भी राष्ट्र का रूप धारण कर रही हैं। आज क़रीब चार हज़ार ज्ञातियों के चार हज़ार राष्ट्र बन रहे हैं, और धर्म भी इस प्रकार टुकड़े करने में मदद कर रहा है।

श्रीकृष्ण— धर्म तो कभी मनुष्यता के टुकड़े नहीं करता। धर्म तो सारी दुनिया में ईश्वर का राज्य बताता है। हरएक देश की विभूतियों को वह ईश्वर का अंश बताता है। राष्ट्र-जाति-वंश कुल की दीवारों से धर्म बहुत ऊपर है—वह इनमें कैद नहीं होता। मनुष्यता के टुकड़े करते हैं—घमंड-मद-मोह आदि महापाप। इनके ऊपर धर्म की सफ़ेदी पोतने से ये धर्म नहीं बन जाते। क्या मुझे और मेरी गीता को जाननेवाले लोग बिलकुल नहीं हैं ?

मैं— आपको पूजनेवाले तो काफ़ी हैं। घर घर आपकी पूजा होती है, गीता के भी गीत गाये जाते हैं, पर काम सब उल्टे ही उल्टे होते हैं। आप का नाम तो सिर्फ़ विलासिता को छिपाने के लिये ओट का काम देता है। राधा-कृष्ण का रास रचाया जाता है, और फिर काम-क्रीड़ा का दौर चलता है।

श्रीकृष्ण— (आश्चर्य से) मेरे नाम के साथ राधा का नाम इस तरह जोड़ा गया है ! मैं राधा को जानता हूं। वह मुझसे काफ़ी स्नेह करती थी, पर मेरे उसके दाम्पत्य की तो मैं कल्पना भी नहीं

कर सकता। व्रज के बालक, व्रज की बालिकाएँ और बड़ी-बूढ़ी नारियाँ भी मुझे खूब चाहती थीं। सबके साथ मैं खूब विनोद करता था, हँसता था—हँसाता था, पर उसमें किसी तरह की गंदगी थी—यह तो मेरे जीवन भर में कोई न कह सका।

मैं-- पर अब आपके भक्त कहते हैं।

श्रीकृष्ण-- छिः! वे क्या मेरे भक्त हैं? इससे तो मेरे दुश्मन अच्छे। ऐसी बदनामी तो उनने भी नहीं की।

मैं-- आपको लोग धर्म-देव नहीं समझते—कामदेव समझते हैं।

श्रीकृष्ण-- दुर्भाग्य मेरा, और क्या कहूं? काम भी एक पुरुषार्थ है, पर विलास और व्यभिचार कोई पुरुषार्थ नहीं है। मैं तो कामदेव से भी गया-बीता हूं।

मैं-- सब जगह अतिवाद का ही दौरदौरा है। कहीं काम के नाम पर विलास और व्यभिचार का राज्य है, और कहीं धर्म के नाम पर वृथा-कष्ट, दम्भ, आलस्य, अकर्मण्यता, मुफ्तखोरी घर किये बैठी है।

श्रीकृष्ण-- गीता और कर्मयोग का नाम ही न रहा?

मैं-- सो तो गीता-जयन्ती मनाई जाती है।

श्रीकृष्ण-- हां, लाश की पूजा की जाती है। अरे, जब जाति-पाँति के पचड़े में लोग फँसे हैं, धर्म के नाम पर लड़ते हैं, जीवन में समन्वय का नाम नहीं है, अतिवाद ही फैला हुआ है, कर्म के कौशल का पता नहीं है, रूढ़ियों की गुलामी है, तब गीता-जयन्ती मनाई तो क्या, और न मनाई तो क्या?

मैं– जी हां, आपकी और आपकी गीता की पूजा तो काफ़ी की जाती है पर आपका और गीता का कहना क्या है?—इसमें सब अपनी अपनी हांक रहे हैं। कोई उसमें से भक्तियोग ही निकालता है, कोई सांख्ययोग निकालकर कर्मयोग निकालने वालों को गाली देता है। कोई कौरव-पांडवों को रूपक मानकर महाभारत को आध्यात्मिक युद्ध कहकर व्यावहारिक-जीवन के लिये उसका कोई उपयोग नहीं रखना चाहता।

श्रीकृष्ण– मुझे तुम्हारी बातें सुनकर काफ़ी आश्चर्य हो रहा है! गीता एक समन्वय ग्रंथ है इसलिये उसमें धर्म के सभी अंशों पर दृष्टि डाली गई है, पर इतने पर भी मैं क्या कहना चाहता हूं वह इतना विवादग्रस्त नहीं है। गीता जिस प्रकरण पर कही गई, जो उसका फल हुआ—उसीसे लोगों को अंदाज लगा लेना चाहिये कि गीता के द्वारा मैं क्या कहना चाहता हूं? देखो सत्यभक्त, जो लोग धर्म का अर्थ अकर्मण्यता समझते हैं और परलोक में ही मोक्ष समझकर अकर्मण्यता से ही उस मोक्ष की प्राप्ति समझते हैं–वे गीता को या मुझे नहीं समझ सकते। मैं दुनिया को स्वर्ग मोक्ष की आशा नहीं दिलाना चाहता, मैं दुनिया को ही स्वर्ग या वैकुंठ बनाना चाहता हूं और यह सब कर्मयोग से ही सम्भव है। संन्यास एक दवा है, किसी ख़ास व्यक्ति के लिये ही उपयोगी है। दुनिया के लिये कर्मयोग है—सब कर्म करते रहो, पर निर्लिप्त रहो–निष्पाप रहो, यही मार्ग है जो गीता बताती है। पाप में सने रहनेवाले या दुनिया से भागनेवाले दोनों ही अतिवादी हैं–वे गीता न समझेंगे।

उँह, जाने दो ! तुम सब समझते ही हो और जो नहीं समझते—उनसे यह सब कहना व्यर्थ है । तुमसे जो कुछ समझाते बने समझा देना।

मैं— आप ही अगर अपने भक्तों के सामने रखने लायक कुछ सूचना-सन्देश दे सकें तो बड़ी कृपा हो ।

श्रीकृष्ण— तुम कहते हो तो मैं ही कुछ कहे देता हूं। 'कर्मण्य-षाधिकारस्ते' । कहो कि—

१—हर जगह की हरएक श्रेष्ठ वस्तु ईश्वर का ही प्रतीक है, ऐसा समझकर हर देश हर जाति और हर धर्म का समन्वय करें ।

२—गुण-कर्म से जाति-भेद का विचार करें, और इसीके अनुसार अपना क्षेत्र बढ़ाते जायें ।

३—जीवन को सर्व-रस-पूर्ण बनायें । योग-भोग का समन्वय करें और निष्पाप रहें । केवल बहादुरी से, केवल त्याग से, या केवल होश्यारी से कार्य सिद्ध नहीं होता—न स्वकल्याण होता है—न पर-कल्याण ।

४—प्रयत्न करते रहें, कभी निराश न हों ।

५—सेवा में बड़प्पन समझें । सेवा से बड़प्पन कम नहीं होता । मैंने अर्जुन का रथ हांका और यज्ञ में पाहुनों के पैर धोये उससे मेरा बड़प्पन बढ़ा—कम नहीं हुआ ।

६—अहिंसा की साधना विवेक के साथ करें । प्रतिपक्षी को देखकर उसका ठीक निश्चय करें । दुःशासनों और दुर्योधनों के सामने भगवती अहिंसा की संहारिणी मूर्त्ति ही विशेष उपयोगी हो सकती है । हां, पहिले 'साम' से काम लेने की पूरी कोशिश की

जाय ।

७-जीवन को आनन्दमय बनायें । निरर्थक कष्ट सहने से धर्म नहीं हो जाता ।

८--मेरे ब्रज-जीवन की कुकथाएँ-जो बिलकुल झूठ हैं, बन्द करें। निर्मल प्रेम और निर्मल विनोद का विस्तार करें और उसी रूप में मेरे बाल-जीवन को देखें और खुद भी बनायें ।

९--मेरे नाम पर चलनेवाले विलास के अड्डों को जड़मूल से उखाड़ दें ।

१० -धर्म का अर्थ रूढ़ि या परम्परा नहीं है; किन्तु युग के अनुरूप कर्तव्य है—इस बात को समझें ।

११--राज्यशासन के लिये धर्मात्मा, निस्वार्थ और निःपक्ष व्यक्ति चुनें । स्वार्थी लोग अच्छी से अच्छी शासन-पद्धति भी बेकार कर देते हैं ।

१२--सारे संसार का एक मानव साम्राज्य बनाने की कोशिश करें, जिससे मनुष्य जाति के पारस्पारिक संघर्ष नष्ट हो जायँ और सब मिलकर मनुष्य जाति के प्राकृतिक कष्टों पर विजय करने में लग जायँ ।

बस! काफी तो हैं, और ज्यादा लदकर क्या करोगे ?

योगेश्वर के विनोद के उत्तर में मैंने मुसकराते हुए कहा—विकार का ही बोझ होता है-विकार की दवा का बोझ नहीं होता।

योगेश्वर खिलखिलाकर हँस पड़े ।

मैंने उन्हें प्रणाम किया और बिदा ली ।

(९) महात्मा महावीर का दर्शन

कृष्ण-मन्दिर से निकलकर मैं महावीर-मन्दिर गया। पद्मासन जमाये हुए महावीर स्वामी शान्ति से बैठे हुए थे। मुझे देखकर बोले- आओ भाई, आओ ! बैठो !

मैं प्रणाम करके बैठ गया। वे बोले-आज दर्बार में तुम्हें देखा तो मुझे प्रसन्नता हुई थी और मैं सोच रहा था कि तुम आओगे। पोशाक तो तुमने वही पहिन रक्खी है-जैसी मैं दे आया था।

जी हां ! वंश-परम्परा से मैं आपका अनुयायी ही हूं, इसलिये उसी फैशन की पोशाक पहिन रक्खी है।

पर क्या तुम्हारा इस पोशाक से काम चलेगा ?

जी, मैं भी यही सोच रहा हूं। लौटते समय छोटे पिता के यहां से होता जाऊंगा-वहां पोशाक बदलने का विचार है।

बदलना ही चाहिये-अनेकान्त सिद्धान्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पर काफ़ी जोर देता है। तुमने तो उस सिद्धान्त को समझा होगा।

जी हां ! काफ़ी समझा है। आपके द्वारा दी हुई वह सबसे बड़ी भेंट है।

मेरे द्वारा दी गई भेटों का आजकल क्या हाल है ?

जीव-दया की भेंट तो काफी सफल कही जा सकती है। आपके भक्त तो मांस खाते ही नहीं, पर आपके उपदेशों की अन्य सम्प्रदायों पर भी ऐसी छाप पड़ी है कि उनमें भी मांस-भक्षण का रिवाज़ उठ गया है। यज्ञ तो एक प्रकार से बन्द ही हैं। फिर भी अभी बहुत काम बाकी पड़ा है; क्योंकि मांस भक्षियों की संख्या अधिक ही है।

खैर ! यह तो अच्छा हुआ, पर इतने में ही तो भगवती अहिंसा की साधना पूरी नहीं हो जाती। उसके लिये बहादुरी चाहिये और जीवन के अन्य अंगों में संयम चाहिये, खासकर अपरिग्रह के बारे में। मैंने अपरिग्रह पर काफ़ी जोर दिया था।

इस बारे में कोई शुभ समाचार नहीं हैं। ईमानदारी, सच बोलना, शील आदि में आपके संघ में कोई विशेषता नहीं है और अपरिग्रह के रूप में तो काफ़ी प्रतिक्रिया भी हुई है। परिग्रह तो पुण्य की निशानी माना जाता है।

क्या साधुओं में भी निष्परिग्रहता नहीं है, या साधु हैं ही नहीं ?

साधुता के अर्थ में तो प्रायः साधु हैं ही नहीं, पर साधु-वेष के अर्थ में हैं; लेकिन उनके द्वारा आपके बताये हुए नियमों के पालन करने की जो विडम्बना होती है—उसे देखकर तो आँसू बहते हैं।

क्या देश-काल के अनुसार बाहरी नियमों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया ?

नियमों के आत्मा की दृष्टि से देखा जाय तो देवत्व की जगह पशुत्व ला दिया गया है और नियमों के शरीर की दृष्टि से देखा जाय तो वह लाश की तरह भिनभिना रहा है।

संघ में नग्न-साधु और वस्त्रधारी-साधुओं का औसत क्या होगा ?

संघ में औसत का सवाल ही नहीं है। अब तो दोनों के सम्प्रदाय, धर्म-स्थान, शास्त्र, गुरु आदि सब अलग अलग हैं। दोनों

का—ख़ासकर दिगम्बरों का विश्वास है कि दूसरे सम्प्रदाय-वाले नरक जायेंगे। वस्त्र धारण करने पर मोक्ष मिल ही कैसे सकता है!

तो दिगम्बर सम्प्रदाय-वालों ने क्या स्त्रियों को भी नग्न रखना शुरू कर दिया है?

जी नहीं, पर उनका मोक्ष छीन लिया है और भी बहुत से अधिकार छीन लिये हैं।

पर, मल्लि तीर्थंकरी तथा अन्य महिलाओं के मोक्ष जाने की कथाएँ तो मैं कह आया था!

वे सब मिट गईं। कथा-साहित्य सब बदल गया है।

बड़ा आश्चर्य है कि बाहरी तपस्याओं को इतना महत्व दिया गया, और व्यापक दृष्टि छोड़कर कष्ट सहन को ही परम-धर्म मान लिया गया और उसके लिये सभी मौलिकताओं को नष्ट किया गया!

जी हां, कष्ट-सहन को परम धर्म मान लिया गया ज़रूर है, पर उसका प्रदर्शन ही किया जाता है—कष्ट सहन नहीं किया जाता। प्रदर्शन के लिये जो विडम्बना की जाती है, उसका हाल सुनकर आप बुरी तरह हँसेंगे।

कैसी विडम्बना?

सुनिये! नग्न रहने के लिये साधु लोग बैलगाड़ियों में पयाल भरकर साथ ले चलते हैं, कपड़े के तम्बू भी साथ चलते हैं। इस प्रकार एक साधु-वेषी के लिये कई गाड़ी सामान की व्यवस्था करना पड़ती है, और फिर ठंड से बचाने के लिये रात में आग जलाना पड़ती है—इससे कई साधु तो जलकर मर भी गये। नग्नता

के नियम का पालन इन सब विडम्बनाओं और हिंसा-कांडों के साथ किया जाता है।

बस ! बस ! अब रहने दो। मैं सब समझ गया। नग्नता की घोर दुर्दशा इससे बढ़कर हो नहीं सकती। मिथ्यात्व अविवेक, मूढ़ता आदि की सफलता का इससे बढ़कर प्रमाण मिल नहीं सकता। मेरे उपदेशों को पढ़ने समझने-वाले अब वहां हैं ही नहीं।

ठीक रूप में शास्त्र ही नहीं हैं। आपके पीछे इच्छानुसार बना लिये गये हैं, और उनको भी ध्यान से—विवेक से पढ़नेवाले नहीं हैं। और नग्न सम्प्रदाय का तो यह हाल है कि विद्वान साधु नहीं बनते और साधु-वेषियों को विद्वत्ता की जरूरत नहीं मालूम होती। वेष से ही उनकी इतनी पूजा हो जाती है कि उन्हें अजीर्ण हो जाता है। एक साधु वेषी को भोजन कराने के लिये गांव के सब जैनियों के यहां ठाट से रसोई बनती है। उद्दिष्ट-त्याग की मौत तो है ही, पर आरम्भ भी इतना हो जाता है कि सपरिवार राजा को भोजन कराने में भी नहीं होता।

मतलब यह कि समाज ऐसी विडम्बनाओं को प्रोत्साहन देता है ?

खूब अच्छी तरह। जो इसे विडम्बना समझते हैं—वे भी चुप हैं; नहीं तो उनकी रोटियाँ छिन जायँगी—प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी।

ओह ! मेरे नग्न-वेष की यह दुर्दशा होगी—इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। खैर, छोड़ो यह पाप-चर्चा। अब यह बताओ कि जिनने नग्नता को नहीं अपनाया, उनकी क्या दशा है ?

नियमों की विडम्बना तो वहां भी काफ़ी है और अतिवाद भी पूरा है। वहां तो आपकी मूर्ति बनाई जाती है और हार-मुकुट

कुंडल आदि आभूषणों से ऐसी लाद दी जाती है कि किसी गमारू देश की रानी को भी इतना नहीं लादा जाता।

यह सब तुम क्या कह रहे हो भाई, अपरिग्रहता के लिये कपड़े का भी त्याग करने-वाला मैं, और उसका राजा-रानियों सरीखा श्रृङ्गार। शायद जिन लोगों ने अपने महात्माओं को शूली पर लटका दिया उनने भी इतनी दुर्दशा नहीं की—जितनी ये मेरे भक्त कर रहे हैं। और, उसको मिटाने-वाला कोई नहीं है!

जी, मिटाने-वाले भी हुए थे, पर उनने आपके मन्दिर मूर्ति आदि सबको मिटा डाला। उनने कहा—'न रहेगा बांस, न बजेगी बाँसुरी।'

अर्थात् 'न रहेगी नाक, न बैठेगी मक्खी।'

मुझे हँसी आई, पर उसे रोकने के लिये ओठों को दांतों से खूब सटाया, फिर कहा—ठीक कहा आपने।

वीतरागता की विडम्बना के खूब समाचार सुनाये तुमने।

पर, फिर भी विडम्बनाओं का अन्त नहीं हुआ है। आपकी निर्दोष वीतरागता, निर्लिप्त उपेक्षा वृत्ति, असंयम में परम्परा से भी सहयोग न देने की सतर्कता का यह रूप हुआ है कि एक सम्प्रदाय सब तरह के जन-सेवा के कामों को—यहां तक कि साधारण शिष्टाचार निभाने तक को पाप समझता है।

ओह! मेरे तीर्थ की इन सबने क्या दुर्दशा कर डाली है। जैसे, गिद्धों ने लाश नोंच डाली हो और चोंच की उस सड़ी हुई एक एक बोटी को पूरा आदमी समझ रहे हों। अनेकान्त की इससे बढ़कर दुर्दशा और कौन करेगा!

जी हां, अनेकान्त को भूलने का ही तो यह परिणाम है। आपके पीछे आपके संघ को चलानेवाले जो बड़े बड़े कहलाने वाले आचार्य उपाध्याय मुनि आदि हुए उनने प्रायः इस सिद्धान्त की जान में अनजान में दुर्दशा ही की। सबका खंडन करने के सिवाय दूसरे धर्मों का समन्वय करना तो सीखा-सिखाया ही नहीं। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के समझने की सारी शक्ति घट और पट के उदाहरणों में ही खर्च कर दी, पर सामाजिक जीवन और कर्तव्य के विचार के लिये उसका कुछ उपयोग नहीं हुआ। इसलिये आज आपके भक्त रूढ़ियों के पुजारी अन्धश्रद्धालु हैं। जमाने ने वैज्ञानिकता को कहीं का कहीं पहुँचा दिया है, पर इनको पुराने सपने ही आते रहते हैं। जमाना इन्हें खींचता है तो ये स्वेच्छा से सम्हलकर आगे नहीं बढ़ते, सिर्फ घिसड़ते हैं। मानों घोड़े की टांग से बंधी हुई लाश खिसड़ती जा रही हो।

इसे मिथ्यात्व और मूढ़ता की सीमा ही कहना चाहिये।

जी हां, पर मजा यह है कि सर्वज्ञता के घमंड से कुप्पा हुए जाते हैं; सर्वज्ञता की परिभाषा ऐसी विचित्र बनाई है कि सुनकर हँसी आती है।

समझ गया, तुम्हारे बिना कहे ही समझ गया। सार यह है कि जिस तीर्थ की स्थापना मैंने की थी—वह तीर्थ मिट गया, खंडहर से भी गया बीता हो गया। खैर, कोई बात नहीं, मनुष्य जैसे पैदा होता है, जवान होता है, बूढ़ा होता है, मरता है—उसी प्रकार धर्म-संस्थाओं की भी दशा है। मरने के बाद पुनर्जन्म होता है। इसलिये मरने के नाम पर रोना व्यर्थ है, अब पुनर्जन्म की ही चिन्ता

करना चाहिये। मेरे नाम की पूजा की जरूरत नहीं, सत्येश्वर की पूजा होना चाहिये—उसमें बाधा न पड़ना चाहिये।

मैंने कुछ विशेष नम्रता से कहा—आप ठीक कहते हैं। सत्येश्वर ही सबके आधार हैं। उनके नाम में ही सबका नाम है। पर इसका यह मतलब नहीं है कि आपका नाम डूब जाय। म. पार्श्वनाथ का तीर्थ आपके नये तीर्थ में समा गया। पर, म. पार्श्वनाथ का नाम तो अमर ही है। जैन-संघ का नाम रहे या जाय, पर आपने जो जगत् को पाठ पढ़ाया है, जो दृष्टि दी है—वह तो अमर है—संघ के पुनर्जन्म हो जाने पर भी वह रहेगी। आप अरहंत हैं, जिन हैं, तीर्थंकर हैं—यह बात प्रलय तक दुनिया याद रक्खेगी।

पर, यह सब गौण बात है। 'वर्तमान' भूत की पर्वाह नहीं करता—वह उसे नहीं देखता।

'वर्तमान' भूत की पर्वाह न करे तो वह कृतघ्न वर्तमान खड़ा न हो सकेगा—वह मिट्टी में मिल जायगा। नींव के पत्थरों की अवहेलना करने से दीवार खड़ी न रह सकेगी। हां, वर्तमान को भूत की नकल न करना चाहिये। दीवार सोचे कि नींव के पत्थरों में खिड़की नहीं थी, इसलिये मैं खिड़की नहीं रखती या छप्पर सोचे कि दीवार में खिड़की है, इसलिये मैं भी खिड़की रक्खूंगा तो यह सब गलत है।

ठीक है, तुम्हारी बातें समझदारी की हैं और जो काम तुम करने जा रहे हो -- उसके अनुरूप भी है। निःसन्देह तुम्हारे मार्ग में बाधाएँ तो बहुत आयेंगी बहुत दिनों तक दुनिया तुम पर हँसती ही रहेगी। पर, मुझे विश्वास है कि तुम मजबूती से टिके रहोगे।

सब आपकी कृपा है । मैं कैसा भी नया काम करूं, कितना भी बड़ा महल बनाऊं, पर उसमें आपके खंडहर का सामान अधिक से अधिक लगेगा ।

अच्छा है, तुम्हारे इस काम में मेरा पूरा आशीर्वाद है ।

यह तो मेरा सौभाग्य है और इसे मैं लेकर जाऊंगा ही, पर साथ ही मैं कुछ सन्देश भी चाहता हूं जो आपकी तरफ से मानव-नगर में कह सकूं ।

पर इसकी तो कोई जरूरत नहीं मालूम होती । सचाई को छाप की क्या जरूरत !

आपके भक्तों के लिये जरूरत है, साथ ही इसलिये भी जरूरत है कि लोग नये-पुराने में संघर्ष न समझें ।

महात्मा महावीर ने जरा उपेक्षा का भाव बताते हुए कहा- अच्छा ! तुम चाहते हो तो कुछ सुन लो ।

१— कहो कि लोग अनेकान्त के पुजारी बनें । वे इसकी ओट में दूसरी धर्म-संस्थाओं और महात्माओं का खण्डन न करें, उनका समन्वय करें ।

२— चौबीस तीर्थंकर या असंख्य अनन्त तीर्थंकरों की मान्यता में जैसे एक ही देव की उपासना होती है उसी प्रकार सभी धर्मों के महात्माओं की पूजा में एक ही देव की सत्येश्वर की पूजा होती है ।

३— अनेकान्त का उपयोग रूढ़ियों, धार्मिक-नियमोपनियमों के परिवर्तन में करें । द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार धर्म का रूप बनावें ।

४– वेष-पूजा छोड़ें। दिगम्बरत्व या अमुक वेष को अनिवार्य न समझें। आज के युग के अनुसार वेष तथा साधु-संस्था आदि का निर्माण करें।

५– सर्वज्ञता का वास्तविक अर्थ समझें, धर्म-तत्व विषयक सर्वज्ञता को ही सर्वज्ञता समझें। बाकी विषयों में युग के अनुरूप ज्ञान के क्षेत्र में स्वतन्त्रता से बढ़ें।

६– सब उप-सम्प्रदाय मिटा दें और दूसरे सम्प्रदायों से सम्बन्ध स्थापित कर विशाल जैनत्व की स्थापना करें। नाम-मोह का त्याग करें।

७– जाति-पांति के भेद-भाव और घमंड को निर्मूल कर दें। मनुष्य को एक जाति मानें।

८– धर्म-स्थानों की विडम्बना दूर करें। दोनों तरह के अतिवादों का त्याग करें।

९– बाह्य-तपों पर इतना जोर न दें कि अन्तरंग-तप गौण हो जायँ।

१०– साधु हों या श्रावक अपने में दीनता न आने दें, पर इसका यह मतलब नहीं है कि शिष्टाचार आदि भी भूल जायँ। आत्म-गौरव की ओट में अहंकार का परिचय न दें, गुण का आदर करना सीखें।

११– पुरुषत्व का घमंड छोड़ नर-नारी समभाव दिखायें। अपनी अपनी योग्यता के अनुसार हरएक स्त्री को ऊंचे से ऊंचे काम करने का अधिकार है। वे तीर्थंकर तक बन सकती हैं।

१२– विश्व-कल्याण में, जगत् को सुखी बनाने में धर्म

समझें। वीतरागता का अर्थ जड़ता या अकर्मण्यता नहीं है किन्तु निःपक्षता है, जिससे निर्मोह रहकर वह हरएक काम कर सके।

बस ! बहुत तो हैं और तुमसे क्या कहूं सत्यभक्त, जो समझदार हैं उन्हें इशारा काफ़ी है और वक्र-जड़ों को तो धक्के पर धक्के लगाओ तब भी न चेतेंगे।

मैंने कहा— जी हां, आपने जो कुछ सन्देश दिये हैं—वे काफ़ी हैं। आपकी इस दया से मैं कृतार्थ हो गया, पर मुझे नये तीर्थ की स्थापना करना पड़ेगी। आशा है, इसके लिये आप क्षमा करेंगे।

म. महावीर के ओंठों पर हलकी-सी मुसकराहट दिखाई देने लगी। उनने कहा—इसके लिये मैं क्षमा क्यों करूंगा ? अरे, इसके लिये मैं पूरा आशीर्वाद दूंगा। तुम जो काम करना चाहते हो उसकी आवश्यकता है और उसी ढंग से आवश्यकता है। युग के अनुसार धर्म-संस्थाओं का पुनर्जन्म हुआ ही करता है, इसमें बुराई की क्या बात है ?

मैं चाहता हूं कि अनेकान्त को ऐसा मूर्तिमंत रूप दूं कि वह व्यवहार में और हरएक क्षेत्र में दिखाई देने लगे।

क्या योजना है तुम्हारी ?

इस युग के लिये जैसे धर्म की आवश्यकता है, अर्थात् जो जो कर्तव्य है—वह सब तो बताना ही है, साथ ही सब धर्मों के आप्तों को - आगमों को स्पष्टता से स्वीकार करना, उन्हें आप्त मानना, उनके स्मारक रखना आदि व्यावहारिक योजना भी है।

तुम्हारी यह योजना मैं पूरी तरह पसन्द करता हूं। इससे

लोगों को अधिक से अधिक व्यापक-धर्म तो मिलेगा ही, एकान्त मिथ्यात्व तो नष्ट होगा ही, साथ ही धर्मों के झगड़े दूर होने से विशाल मानव-धर्म और मानव-जाति की नींव भी पड़ेगी। तुम्हारे ज़माने में तो आने-जाने के साधन काफ़ी बढ़ गये हैं, इसलिये अब किसी छोटे से क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही धर्म-संस्था न बनना चाहिये, अब तो वह सर्व-समन्वयात्मक, अधिक से अधिक अनेकात्मक-व्यापक बनना चाहिये।

जी हां, यही मेरी इच्छा है।

मै तुम्हारे इन विचारों और योजना से खुश हूं। अन्तःकरण से मेरा पूरा आशीर्वाद है।

आपके इस आशीर्वाद से मेरा बल दूना हो गया है। वास्तव में मैंने जो कुछ पाया है—वह आपके ही उपदेशों के मंथन का फल है। आपकी कृपा से ही मैंने सरस्वती-मां का और विवेक-दादा का आशीर्वाद पाकर सत्येश्वर के दर्शन किये हैं।

दूसरी किसी राह से आकर भी तुम सत्येश्वर-नगर में प्रवेश कर सकते थे। सब राहें सत्येश्वर की तरफ़ जाती हैं। नगर में पहुँचने पर राहों का भेद नहीं रहता। सब राहें एक जगह मिल जाती हैं।

जी हां, इसीलिये अब मुझे कोई भेद-भाव या पक्षपात नहीं रह गया है। हां, यह बात ज़रूर है कि आपके त्याग-तप की राह पर मैं अच्छी तरह नहीं चल सका हूं।

बहुत कुछ चल सके हो। जो कमी है--वह भी पूरी हो जायगी। त्याग और तप का एक ही रूप नहीं है--न उसका कोई

ख़ास वेष है । कूर्मा-पुत्र घर में रहते हुए भी त्यागी तपस्वी और केवली थे । इसलिये तुम्हें लज्जित होने की ज़रूरत नहीं है । असली चीज़ तो आत्मा है ।

आपने मेरा न जाने कितना बोझ उतार लिया है ।

सब अपने आप उतर जायगा । यों-तो यह रास्ता विकट ही है । विपत्-विरोध-उपेक्षा का तुम्हें खूब सामना करना पड़ेगा । पर, तुमने तो भगवान-भगवती का आशीर्वाद पाया है, सब सह जाओगे । असफलता भी तुम्हें निराश न कर सकेगी, यही तो सफलता की कुंजी है ।

प्रसन्नता के मारे मैं बोल न सका । कुछ क्षण शान्त रहने के बाद मेरे मुँह से सिर्फ़ इतना ही निकला—धन्य भाग्य !

इतना कहकर मैंने उन्हें प्रणाम किया । उनने भी आशीर्वाद देते हुए कहा—अच्छा जाते हो ! आओ !

(१०) महात्मा बुद्ध का दर्शन

महावीर-मन्दिर से निकलकर मैं बुद्ध-मन्दिर पहुँचा । जब मैं पहुँचा तब वे दीवानखाने में चंक्रमण कर रहे थे । मेरे पहुँचते ही उनने मुसकराहट के साथ कहा—ओह ! तुम ! ठीक आये, बैठो !

पर वे चंक्रमण कर ही रहे थे, इसलिये मैं खड़ा ही रहा । तब उनने कहा—बैठो संकोच किस बात का !

मैंने कहा—आप बैठिये फिर मैं बैठूंगा ।

उनने कहा—अच्छा, अच्छा, मैं भी बैठता हूं । तुमसे तो बहुत-सी बात करना है, इसलिये बैठना तो है ही ।

यथा-स्थान बैठने के बाद म. बुद्ध ने पूछा--कहो, मेरे संघ के

क्या हालत है !

मैंने कहा--भारतवर्ष से तो आपका संघ उठ ही गया है, पर लंका, ब्रह्मदेश, त्रिविष्टप, चीन, जापान आदि देशों में है ।

म. बुद्ध--कोई हानि नहीं । मेरा संघ पुत्र न बना पुत्री ही बना, जो बालपन में अपने घर में रहा और जवानी में दूसरे घर चला गया । किसी तरह दुनिया के काम तो आया । पर आश्चर्य की बात तो यह है कि तुम कह रहे हो कि अभी तक संघ है । मेरा खयाल था कि मेरा संघ मेरे बाद एक हज़ार वर्ष तक रहेगा, पर जब आनन्द ने बार-बार प्रेरणा कर भिक्षुणी-संघ की स्थापना भी करवाई, तब मैंने कहा कि अब यह संघ पांच-सौ वर्ष तक ही रहेगा ।

मैं-- एक तरह से आपका कहना सच ही था । अब जो यहां संघ है--वह आपका संघ नहीं है, संघ की लाश है ।

कब से है यह लाश !

ठीक तो नहीं सकता, पर भारतवर्ष में तो यहां से विदा होने के पहिले ही लाश हो गया था । साधु-साध्वी-संघ, मंत्र-तंत्र और दुराचारों के केन्द्र बन गये थे । सम्राट्-अशोक और कनिष्क से जो आश्रय मिला उससे संघ फैला तो खूब, पर विकृत भी खूब हुआ । इसीसे यहाँ नष्ट हुआ दूसरे देशों में नाम से फैला है, बाक़ी सब समाप्त है । अहिंसा सिद्धान्त की तो पूरी दुर्दशा और विडम्बना हुई है । हां, बड़े बड़े स्मारक ज़रूर बने हुए हैं ।

ठीक है, आख़िर सब अनित्य है । अनित्य की अनित्यता का प्रमाण मिला--इसमें शोक करने की कोई बात नहीं है । अस्तु,

मेरा संघ न सही, पर संसार तो है उसकी क्या दशा है ?

दशा काफ़ी बुरी है। अहिंसा सिद्धान्त इतने अंशों में सफल तो है कि यज्ञ-काण्ड बन्द हो गये हैं; फिर भी काफ़ी मांस-भक्षण होता है। और मनुष्य-मनुष्य में जो परस्पर संहार होता है वह तो गज़ब का है। उस दिन आपने शाक्य और कोलियों को समझाया था कि खून की कीमत पानी से ज्यादा है, पर आज तो सारे राष्ट्र शाक्य कोलियों से भी अधिक भयंकर रूप में मिट्टी पानी आदि के लिये खून बहा रहे हैं। संसार नरक बना हुआ है।

तब तो यह कहना चाहिये कि धर्म नाम-शेष हो गये ?

जी हां, नाम-शेष के समान ही समझिये। लाश बची भी तो क्या हुआ !

मध्यम-मार्ग की लाश का क्या हाल है ?

उसकी तो लाश भी नहीं है—दोनों तरफ़ अतिवाद है। भयंकर विलास है, और भयंकर रूप में निरर्थक कष्ट-सहन है। विवेक-हीन कष्ट को लोग आज भी धर्म समझते हैं। तपस्या का दम्भ आज भी सब जगह फैला हुआ है।

ठीक है, यही सम्भव है। अगर यह सब न होता तो तुम्हारे आने की ज़रूरत न रहती। खैर, नारियों की कुछ प्रगति हुई कि नहीं ?

उनका भी वही स्थान है बल्कि कहीं कहीं उससे भी खराब है। जब राजा प्रसेनजित को घर में पुत्री पैदा होने का समाचार मिला तब उसके लज्जित मुँह को देखकर आपने उसे समझाया था और नर-नारी-समभाव का उपदेश दिया था। पर, समभाव अभी

तक फैला नहीं है। आज भी धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा दायभाग आदि के कानूनी-क्षेत्र में नारी की पूरी अधोगति है।

ठीक है, धर्म की पुनर्घटना का पूरा समय आ गया है। अब तुम इसके लिये कोशिश तो करोगे!

जी हां, पर मैं आपसे आशीर्वाद, कुछ सलाह और सन्देश चाहता हूं।

आशीर्वाद तो है ही। पर सलाह क्या दूं और सन्देश किसे दूं?

सलाह तो मुझे चाहिये। तीर्थ-स्थापन की कठिनाइयों से आप सुपरिचित हैं और उन पर आपने विजय भी पाई है काफी लम्बे समय तक – चवालीस वर्ष तक – उसका संचालन किया है। आपके अनुभव और चेतावनी मेरे काफी काम आयगी।

म. बुद्ध ने क्षण भर रुककर कहा–हां, यह हो सकता है। दो-चार बातें मैं तुमसे कह देता हूं। पहिली बात तो यह है कि तुम निराश कभी न होना। बाहिरी सफलता-असफलता की पर्वाह न करना, बुद्धत्व प्राप्त होने के बाद मुझे क्षण भर को यह हुआ था कि इस अतिवादी जगत् में मेरे निरतिवादी–मध्यममार्ग को कौन पूछेगा, इसलिये तीर्थ-स्थापन से विरक्त हो रहा था, पर तुरंत ही मुझे समझ में आ गया कि यह मार-पापी की चोट है। तुम्हें भी ऐसी चोट लग सकती है, पर डटे रहोगे तो जगत् का और अपना भी भला कर जाओगे। चिन्ता न करना कि दुनिया तुम्हें छोटा समझती है कि बड़ा, बड़प्पन के लिये अतिवादी भी न बनना, सत्य को न छोड़ना, फिर सब भला होगा!

दूसरी बात यह कि विरोधियों की पर्वाह न करना। जो लोग विचार-भेद के कारण विरोधी हैं–उनका तो बिलकुल भय न करना चाहिये; क्योंकि उनके मत-भेद में एक तरह की प्रामाणिकता रहती है। वे आज नहीं तो कल समझ ही जाते हैं और नहीं समझते हैं तो भी निरुपद्रव रहते हैं, अथवा उनका विरोध बिना किसी अशान्ति के किया जा सकता है। पर, जो विरोधी स्वार्थ के कारण बन गये हैं–वे ही जीवन की सच्ची और कठोरतम परीक्षा लेते हैं। इनमें कुछ विरोधी तो ऐसे होते हैं कि जिनके स्वार्थ नयी क्रान्ति के कारण छिनने लगते हैं या जिन्हें छिनने का भय हो जाता है। दूसरे वे होते हैं कि स्वार्थ-सिद्धि की आशा से अनुयायी बन जाते हैं, पर जब उनका वह स्वार्थ सिद्ध नहीं होता या पूरी तरह सिद्ध नहीं होता, अथवा उनके पापमय जीवन की गुजर नहीं होती, तब मत-भेद का बहाना बनाकर अथवा व्यक्तित्व के ऊपर कीचड़-उछालकर विरोधी बन जाते हैं। देवदत्त ने मेरे साथ यही किया था–उसने मेरे प्राण लेने तक की भारी कोशिश की, निंदा करने के लिये एक से एक कल्पनाएँ गढ़ीं। भयंकर से भयंकर षड्यंत्र रचे। यह सब प्रायः होता ही है। भाई नात-पुत्र को जमाली ने इसी तरह परेशान किया था--स्वार्थ-सिद्धि में बाधा पड़ने पर मत-भेद के नाम पर विरोधी और दुश्मन हो गया था। ऐसे लोग क्रान्ति के मार्ग में बड़े-बड़े रोड़े अटकाते हैं। अगर मनुष्य में गम्भीरता हो, पूर्ण आत्म-विश्वास हो, हानि-लाभ की पर्वाह किये बिना अपने मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प हो तो ये विरोधी कुछ नहीं कर पाते–असफल रहते हैं। तुम्हारे सामने भी ये परेशानियाँ आयेंगी,

इसलिये तुम घबराना मत, बल्कि विरोध को गति का साधक बना लेना ।

तीसरी बात यह है कि मध्यम-मार्ग का पूरा ख़याल रखना, किसी भी चीज़ की अति अच्छी नहीं होती, इसलिये तुम्हें निरतिवादी बनना चाहिये । त्याग ज़रूरी चीज़ है, पर वह साधन है। निरर्थक कष्ट सहन का प्रदर्शन करके तुम जनता से वाह-वाही पा सकते हो, पर न तो अपना विकास कर सकते हो—न जनता को पथ बता सकते हो । काम और मोक्ष—योग और भोग—दोनों के समन्वय में जीवन की सफलता है । पर, अतिवादी लोग दोनों तरफ़ से सतायेंगे । तुम्हारे आवश्यक त्याग को एक तरह के अतिवादी पागलपन समझेंगे, दूसरे अतिवादी उतने ही त्याग में विलासी कहेंगे । जब तुम अनावश्यक क्रिया-कांडों को हटाओगे, तब एक अतिवादी दल तुम्हें नास्तिक आदि कहेगा और दूसरा अतिवादी दल, जो ज़रूरी व्यवहार या भावोद्दीपक स्पष्ट और साफ़ क्रियाएँ रह जायँगी या तुम बनाओगे, उन्हें देखकर तुम्हारा मजाक उड़ायगा । बात यह है कि अतिवादियों को विवेक नहीं होता, वे आस्तिकता या नास्तिकता के अन्धे गुलाम होते हैं । कहां तक कौन चीज़ उपयोगी है—यह वे नहीं समझते । ऐसे लोग तुम्हारे विरोधी भी हो सकते हैं, ईर्षालु भी हो सकते हैं या हितैषी बनकर समझाने का ढोंग करनेवाले भी हो सकते हैं । तुम्हें उनकी पर्वाह नहीं करना है, तुम्हें विवेक की सलाह के अनुसार सत्येश्वर की आज्ञा का पालन करना है । तुम उन्हें खुश करने के लिये निरतिवाद न छोड़ देना, किसी अतिवाद की तरफ़ न झुक जाना, उपयोगिता

को समझते हुए मध्यम-मार्ग का विधान करना।

चौथी बात यह है कि सर्वज्ञता का दंभ न करना, नहीं तो अपने अनुयायिओं के मार्ग में रोड़े अटका जाओगे—वे धर्म-तत्व को भूलकर निरर्थक बातों के फेर में पड़ जायँगे और हर तरह के विकास और प्रगति से हाथ धो बैठेंगे।

पांचवीं बात यह है कि धर्म-शास्त्र को धर्म-शास्त्र रखना, उसमें दर्शन, भूवृत्त, इतिहास आदि विषयों के किसी ख़ास रूप को धर्म का अंग बनाकर न डालना। उदाहरण की तरह उनके किसी भी रूप का उपयोग भले ही किया जाय; परन्तु उनका विकास और विचार स्वतन्त्र ही रखना चाहिये। धर्म का काम सिर्फ दुःख-निवृत्ति का उपाय बताना है। इसे ही मैंने चार आर्य-सत्य के नाम से बताया था, यही धर्म है। ईश्वर परलोक आदि चर्चा को महत्व न देना—इनके बारे में किसी का कैसा भी विश्वास हो तुम तो सिर्फ यही देखना कि उस विश्वास का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

मैंने कहा—आपके बहुत से अनुयायी इस बात पर बड़ा जोर देते हैं कि धर्मात्मा होने के लिये निरीश्वर-वादी होना ज़रूरी है। जिन प्रश्नों की चर्चा करना आप पसन्द तक न करते थे, उन्हीं पर उनका बड़ा जोर है।

म. बुद्ध—भूलते हैं वे। मैं स्वयं एक तरह से निरीश्वर-वादी था, पर इन दार्शनिक विचारों को धर्म में लाने की मैंने कोशिश नहीं की। ईश्वर परलोक स्वर्ग नरक आदि के बारे में कुछ कह-लाने के लिये आनन्द ने बड़ा जोर मारा था, पर मैंने उसे फटकार

ही दिया था। और इन अतत्व रूप बातों पर मौन ही रक्खा था। हां, इतना ख़याल अवश्य रखना चाहिये कि निरीश्वर-वादी भी बुद्धत्व प्राप्त कर सकता है। अस्तु, अब एकाध बात व्यवस्था के बारे में है--तुम्हारे सामने बड़ा जबर्दस्त सवाल साधु-संस्था का होगा। इसमें सन्देह नहीं कि दुनिया को सच्चे साधुओं की ज़रूरत सदा पड़ती है और सत्येश्वर का सन्देश तो उन्हीं के जरिये फैलाया जा सकता है। पर, परिग्रह की दृष्टि से अतिवादी रूप से बचना। शरीर को सुखाने का ही प्रदर्शन करने-वाले साधु नहीं हो सकते और विलास तथा अपने ही तुच्छ स्वार्थों में लगे रहनेवाले भी साधु नहीं हो सकते। बस! और सब बातें तुम खुद समझ लोगे।

मैं– आपके महान अनुभवों से मुझे सेवा-कार्य में काफी सहूलियत होगी। पर एक चिन्ता मुझे बेचैन किये रहती है। वह यह कि इस काम में जबर्दस्त आत्मश्लाघा है। इसे बेशर्मी और घोर अहंकार तक कहा जा सकता है–मैं इससे बचना चाहता हूं, बतलाइये, कैसे बचूं!

म. बुद्ध कुछ विचार में पड़ गये फिर कुछ हँसे और बोले– नहीं, यह नहीं हो सकता। तुम किसी दूसरे के नाम की छाप से काम करो तभी यह हो सकता है, पर यह सब अतथ्य व्यर्थ है। जब किसी की छाप है ही नहीं, तब छाप लगाना क्यों? फिर इससे सर्वधर्म-समभाव के काम में काफी बाधा पड़ेगी, जो तुम्हारे युग की ख़ास समस्या बनी हुई है। यह कड़ुआ घूंट तुम्हें पीना ही होगा।

मैं–पर मेरा तो इस बात के ख़याल से ही दिल बैठता है, साथ ही यह भी सोचता हूं कि अपने ही पैरों के भरोसे चलने

पर दस-बीस वर्ष तक शायद कुछ भी प्रगति न हो। लोग हँसी में ही उड़ा दें।

म. बुद्ध—यह सब स्वाभाविक है। जब मैं बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद कासियों के देश को जा रहा था, तब उपक आजीवक ने मेरी बुरी तरह हँसी उड़ाई थी। वर्षों तक लोग मेरी हँसी उड़ाते रहे। पर मैंने कुछ चिन्ता नहीं की, हँसी उड़ ही गई और काम रह गया।

मैं—पर मन में जब संकोच और लज्जा हो तब दुनिया को किस तरह से क्या दिया जाय?

म. बुद्ध—संकोच और लज्जा को पचाये बिना तुम साधारण सभा में वक्तृत्व के लिये भी खड़े नहीं हो सकते। मनुष्य को अहंकार न करना चाहिये, कृतघ्न भी न बनना चाहिये, महात्माओं के महत्व को गिराकर महान कहलाने की कोशिश न करना चाहिये, पर आवश्यकता-वश अपने उचित व्यक्तित्व को स्वीकार करने में क्या बुराई है?

मैं— बुराई तो नहीं है लेकिन........।

म. बुद्ध— लेकिन-किन्तु-परन्तु कुछ नहीं। संस्था व्यक्ति की छाया है, लोग अमूर्त धर्म को नहीं देखते—वे देखते हैं व्यक्ति को। व्यक्ति-निष्ठा के आधार पर उनकी धर्म-निष्ठा खड़ी होती है। इसलिये जो मेरे संघ में आता था उसे पहिले 'बुद्धं सरणं संगच्छामि' कहना पड़ता था। पीछे 'धम्मं सरणं संगच्छामि' की नौबत आती थी। भाई नात-पुत्त ने भी पहिले 'णमो अरहंताणं' कहलाया था। अपने को सर्वज्ञ-अर्हत्-जिन-केवली-जीवन्मुक्त आदि घोषित करना

पड़ा था। वैद्य अगर विनय के कारण अपनी असमर्थता आदि की बातें कहे तो रोगी का रोग घटने के बदले दूना हो जाय। तुम्हें यह सब संकोच छोड़ देना चाहिये।

मैंने एक सन्तोष की गहरी साँस ली। म. बुद्ध ने कहा—क्यों? क्या सोचते हो?

मैंने कहा—आपने मेरे रास्ते में से पहाड़ की तरह अड़ी हुई चट्टान को हटाकर रास्ता साफ़ कर दिया है। किन शब्दों में आपको धन्यवाद दूं।

म. बुद्ध—आज मैं न हटाता तो कल तुम खुद हटा लेते। फिर भी जो हुआ--अच्छा हुआ। कुछ समय ही बचा। धन्यवाद मैं बिना दिये ही ले लेता हूं और बदले में आशीर्वाद दिये देता हूं।

मैं--आपके आशीर्वाद से मैं कृतार्थ हुआ, अब सिर्फ एक ही प्रार्थना और है कि मानव-नगर में देने लायक आपकी तरफ़ से कुछ सन्देश और मिल जायँ।

म.बुद्ध—इसकी तो कोई ज़रूरत नहीं मालूम होती।

मैं—है, आज भी भारतवर्ष में आपके नाम की पूजा होती है। और संघ की पुनःस्थापना का भी प्रयत्न हो रहा है और एशिया के बहुभाग में तो आपकी ही पूजा अधिक से अधिक होती है। आपके सन्देश पर्याप्त श्रद्धा-भावना से सुने जायँगे--इससे उनका कल्याण होगा।

मेरे निवेदन पर ध्यान देकर उनने निम्नलिखित सन्देश दिये---

१—अहिंसा का अच्छी तरह पालन किया जाय। इसके

लिये मांस-भक्षण तो अब छोड़ ही देना चाहिये।

२–एक देश दूसरे देश पर राजनैतिक सत्ता स्थापित न करे।

३–जिन दार्शनिक चर्चाओं का अब तक अन्त नहीं हुआ और न जिनके बारे में मनुष्य-बुद्धि पूरी तरह काम कर पाती है और जिनके दोनों पहलुओं का सदुपयोग या दुरुपयोग किया जा सकता है, उन पर झगड़ा न करें। जो मान्यता जँच जाय उसी का सदुपयोग करें।

४–निरतिवादी या मध्यम-मार्गी बनें। अनावश्यक कष्ट-सहन का दंभ न करें। हां, विश्व-कल्याण के लिये उपयोगी अधिक से अधिक कष्ट सहें।

५–नारी को तुच्छ न समझें। प्रारम्भ में मैंने जो भिक्षुणी-संघ का निषेध किया था–वह सिर्फ इसलिये कि साधु-साध्वियों के मिलने से साधु-सैनिकों में दुराचार प्रवेश न कर जाय, उसका मतलब नारीत्व को तुच्छ दृष्टि से देखना नहीं था। नारियाँ भी आख़िर अर्हत् हो सकती हैं, हुई हैं।

६–हरएक रीति-रिवाज़ का मतलब और उसकी उपयोगिता समझने की कोशिश करें, सिर्फ रूढ़ि के कारण निरर्थक या दुरर्थक कोई काम न करें।

७–जन्म से किसी को ऊंच-नीच न समझें। गुण-कर्म से ही मनुष्य की उच्चता नीचता है।

८–लोग चमत्कारों के चक्कर में न पड़ें–ये सब आंख-मिचौनी के खेल हैं। सत्येश्वर ने प्रकृति के जो नियम निर्धारित कर दिये हैं–उनको कोई नहीं तोड़ सकता। मंत्र-तंत्र आदि सब झूठ हैं और धार्मिकता से तो इनका ज़रा भी सम्बन्ध नहीं है।

९—अनित्यत्व-क्षणिकत्व-शून्यत्व आदि भावनाओं का जो मैंने उपदेश दिया था - वह सिर्फ इसलिये कि इष्ट-वियोग अनिष्ट-संयोग आदि का कष्ट मनुष्य को न हो, उन पर वह विजय पा सके। ये भावनाएँ दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में नहीं हैं। अनासक्ति के सिवाय इनका कोई वैज्ञानिक या दार्शनिक उपयोग नहीं है।

१०—सुख का श्रोत बाहर से जितना है उससे कई गुणा भीतर से है, इसलिये सुख की खोज के लिये बाहर ही न दौड़ें भीतर भी खोजें मन को वश में करें।

बस! पर्याप्त तो हैं इतने सन्देश।

मैं—जी हां, यों तो जितना आप कहेंगे सबमें अतृप्ति ही रहेगी, पर जितना आप चाहें मैं उसीसे कृतार्थ हूं।

इतना कहकर मैने उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नता से विदा ली।

(११) म. ईसा का दर्शन

बुद्ध-मन्दिर से निकलकर मैं यीशु-मन्दिर पहुँचा। क्रास के चिन्ह से ही मैं उनका मन्दिर पहिचान गया। दृढ़ विश्वास से भरे हुए उनके गम्भीर चेहरे पर नज़र पड़ते ही मैंने उन्हें प्रणाम किया। और वे हँसकर बोले—मैं तुमसे सच कहता हूं कि तुम्हें देखकर उतना ही खुश हुआ हूं जितना एक बालक को देखकर हो सकता था। बालक निर्दोषता की मूर्ति है, इस बात में वह जवानों और बूढ़ों का गुरु है।

मैंने कहा—बालक ने बुद्धि का स्वाद नहीं चख पाया है। जब वह बुद्धि का स्वाद चख लेता है तब उसकी स्वार्थ-वासना जग पड़ती है और वह निर्दोष नहीं रह पाता। बुद्धि के साथ

निर्दोष होना बड़ा कठिन है।

महात्मा ईसा ने कठिनाई की तरफ लापर्वाही दिखाते हुए कहा—मैं तुमसे सच कहता हूं कि जो लोग बुद्धि का स्वाद चखने के साथ बालक की तरह निर्दोष बनते हैं वे ही ईश्वर के बेटे कहलाते हैं।

मैंने कहा—पर आपके अनुयायी ऐसे निर्दोष हरएक आदमी को ईश्वर का बेटा कहां मानते हैं? वे तो सिर्फ आपको ही ईश्वर का इकलौता बेटा मानते हैं। और उसमें एक प्रमाण यह भी रखते हैं कि मरियम-देवी की कौमार्य अवस्था में जो आप गर्भ में आये उसका कारण यह है कि आपका पिता ईश्वर है कोई मनुष्य आपका पिता कैसे हो सकता था?

महात्मा ईसा खूब अच्छी तरह हँसे और फिर बोले—अरे भाई! अगर कोई स्त्री मेरी मां हो सकती है तो कोई पुरुष मेरा बाप क्यों नहीं हो सकता? मेरा शरीर किस के रजवीर्य से पैदा हुआ क्या इसी पर यह बात निर्भर है कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं कि नहीं? आदमी का शरीर कुमारी के शरीर से पैदा हो या विवाहिता के, धनी के या गरीब के, ऊँच कहलाने-वाले के या नीच कहलाने वाले के, इससे मनुष्य की महत्ता नहीं है। मनुष्य की महत्ता है धर्मात्मा होने से, मेल मिलाप कराने से, इसी से वह ईश्वर का पुत्र कहलाता है। और इसीलिये मैं ईश्वर का पुत्र था। हरएक आदमी चाहे तो इस प्रकार ईश्वर का पुत्र हो सकता है।

मैं—आपके इस वाक्य का अर्थ आपके अनुयायी मानने को तैयार नहीं हैं।

म. ईसा– मेरी बात न मानने-वाले मेरे अनुयायी कैसे ! क्या वहां मेरे अनुयायी हैं ?

मैं– आप जिस अर्थ में पूछ रहे हैं, उस अर्थ में तो आपका अनुयायी कोई दिखाई नहीं देता । आपके नाम के गीत-गाने वाले करोड़ों आदमी हैं । सम्भवतः पृथ्वी में उन्हीं की संख्या सबसे अधिक है ।

म. ईसा– संख्या से क्या होता है ? उनके काम कैसे हैं, इसी पर मेरे नाम लेने का महत्त्व निर्भर है ।

मैं– यह न पूछिये ! इसके उत्तर में शैतान का लम्बा पुराण पढ़ना पड़ेगा । इसमें सन्देह नहीं कि आपके पीछे आपके भक्तों ने आपके धर्म का खूब प्रचार किया, पर उससे आपके वास्तविक धर्म का प्रचार नहीं हुआ--शैतानियत का ही प्रचार हुआ । आपकी ही पूजा करने-वाले आपस में धर्म के ही नाम पर भयंकर रूप में लड़े, क्रूर बने । लाखों आदमियों को जिन्दा जलाया, स्त्री और बच्चों को भी न छोड़ा । आपने तो यरुशलम के मन्दिर के पाखंड को दूर करने के लिये जीवन दिया, पर आपके ही नाम पर पोपों के पाखंड ऐसे बढ़े कि शैतान भी थोड़ी देर के लिये फीका पड़ जायगा ।

म. ईसा– क्या आजकल भी मेरे ये भक्त इसी तरह लड़ते हैं ?

मैं– नहीं । धर्म के नाम पर परस्पर में झगड़ना तो इनने छोड़ दिया है, पर धर्म के प्राण ले लिये हैं और उसके मुर्दे शरीर से ऐसा जाल बनाया है, जिसमें फँसाकर लाखों करोड़ों आदमी चूसे जाते हैं ।

म. ईसा कुछ मुसकराकर बोले–तुमने मेरी तरह उपमाओं

में बातचीत करना तो काफी सीख लिया है, पर अपने उपमा-चित्रों में कुछ रंग तो भरो !

मैं– बात यह है महात्माजी ! कि, आपने कहा था कि सुई के छेद में से ऊंट निकल जाय तो निकल जाय, पर स्वर्ग के द्वार में से धनवान नहीं निकल सकता। पर, आज आपके चेलों ने संसार का जितना धन लूट-खूटकर रख लिया है, उतना आज तक कोई नहीं रख सका। एक तरफ़ देश के देश गरीबी में पड़े पड़े दाने दाने को तड़प रहे हैं--दूसरी तरफ़ आपके चेले उन गरीबों के रक्त की अन्तिम बूंद तक चूस लेना चाहते हैं। पूँजी के बल पर यन्त्र-वाद के जरिये दूसरे देशों पर जैसी डकैती आपके चेले कर रहे हैं--वैसी कभी किसी ने नहीं की।

म. ईसा– क्या मेरे चेलों में धर्म-प्रचारक कोई नहीं हैं, जो ऐसे कुकार्यों में रोक लगायें।

मैं– धर्म-प्रचारक तो हैं, पर वे आपके पूँजीवादी चेलों के दूत-मात्र हैं। उनकी गुजर पूँजीवादियों के भरोसे होती है और वे साम्राज्यवादियों की अंग्रिम सेना का काम करते हैं। आपने सिखाया था कि–कोई एक गाल पर एक तमाचा मारे तो दूसरा दिखा दो; पर आपके चेले साम्राज्यवादी बनकर दुनिया भर को ढूँढते-फिरते हैं कि दुनिया के किस छोड़ पर या किस जंगल में कौन-सी प्रजा बसती है–जिसे तमाचा मार-मार कर बेहाल किया जाय। और इस काम के लिये आपके धर्म-प्रचारक अंग्रिम दूत बनकर पहिले पहुँच जाते हैं। इस प्रकार बाइबिल तलवार की नोक बनी हुई है।

म. ईसा– जिन लोगों ने मुझे निरपराध ही क्रूस पर लट-

काया—वे लोग पापी थे, फिर भी नासमझ थे; मैंने उनको माफ करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना की थी। पर जो लोग मेरी भक्ति के नाम पर संसार भर पर इस प्रकार कहर बरसा रहे हैं, उनके लिये किस मुँह से क्षमा मांगू—यही नहीं सोच पाता हूं। ये शैतान धर्म-प्रचार भी तलवार की नोक के बल पर करते होंगे!

मैं– शताब्दियों तक इनने यही किया है, पर अब इनने तरीका बदल दिया है। अब ये रोटी के टुकड़े डालकर धर्म-प्रचार करते हैं। धर्म के नाम पर किसी देश के कुछ निवासियों को अपना बना लेना और उनके जरिये फूट फैलाना इनकी खास नीति है। फिर भी ये उन्हें गुलाम ही समझा करते हैं। देखा गया है कि गोरी चमड़े के प्रचारक गैर-गोरी जनता को ईसाई तो बना लेते हैं, पर फिर भी उन्हें अछूत-सा समझते रहते हैं; यहां तक कि गोरों के गिरजे अलग और गैर-गोरों के गिरजे अलग रहते हैं।

म. ईसा– कुछ उत्तेजित से होकर बोले—भाई सत्यभक्त, मैं तुमसे सच कहता हूं कि ये ही लोग हैं—जो नरक की आग में डाले जायेंगे। मेरे नाम का लिया हुआ बपतिस्मा इनकी जरा भी रक्षा न कर सकेगा। मैं सेवा का पाठ पढ़ाने के लिये जगत् में गया था, पर मेरे भक्त कहलाने-वाले लूट का पाठ पढ़ते हैं।

मैं– सेवा का पाठ भी पढ़ते हैं। यह भी मैं कह सकता हूं कि आपके अनेक भक्त रोगियों की अच्छी सेवा करते हैं, पर इस सेवा का उपयोग होता है—साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के प्रसार में। इनमें कोई कोई सच्चे सेवक भी हैं, पर इन्हें कौन पूछता है! नक्कार खाने में तूती की आवाज कौन सुने!

मेरी बात सुनकर ,महात्माजी कुछ चिन्तातुर से हो गये, और कुछ समय तक सिर से हाथ लगाकर बैठे रहे। मैं उनके विषादपूर्ण चेहरे की तरफ़ देखता रहा, फिर बोला—मैं मानव-नगर जाने-वाला हूं। मैं चाहता हूं कि आप कुछ सन्देश देने की कृपा करें।

उनने उपेक्षा के स्वर में कहा—ऊँह, ऐसे लोगों को सन्देश देने से क्या होगा ?

मैंने निवेदन किया—बिलकुल व्यर्थ तो न जायगा। आपके अनुयाइयों में ऐसे भी लोग हैं जिन्हें सच्चे ईसाई कहा जा सकता है और बाहर भी ऐसे लोग हैं। आपके सन्देशों से उन्हें कुछ न कुछ बल अवश्य मिलेगा। सम्भव है, वे अपनी आवाज बुलन्द कर सकें।

म. ईसा—खैर, जब तुम जा ही रहे हो और आग्रह करते हो तो कुछ बातें कह देता हूं।

१—कहो कि, लोग पूँजीवाद का त्याग करें। ऐसे लोग न तो स्वर्ग में जगह पा सकते हैं—न जीवन में सुखी रह सकते हैं।

२—कहो कि, लोग साम्राज्यवाद का त्याग करें, नहीं तो मनुष्य को आपस में लड़कर इस तरह कट-कट कर मरना पड़ेगा कि सारी दुनिया नरक बन जायगी।

३—धर्म-प्रचार लोगों की भलाई की दृष्टि से करें—राज्य बढ़ाने या फूट फैलाने के लिये नहीं।

४—धर्म-प्रचार का यह अर्थ नहीं है कि अन्य धर्मों की निन्दा की जाय। उसका अर्थ है—सदाचार और त्याग का प्रचार किया जाय। और पुराने में जो कमी हो उसे पूरा किया जाय।

मैं नबियों की शिक्षा लौटाने के लिये नहीं, किन्तु पूरा करने गया था।

५--रंग-भेद बिलकुल मिटा देना चाहिये। आदमी की कीमत चमड़े के रंग से नहीं किन्तु उसके त्याग और सदाचार से है।

६--अहिंसा और न्याय से ही सब सुखी रह सकते हैं। हिंसा से विजयी और विजित सबका नाश है।

बस ! और कुछ कहने को जी नहीं चाहता। बाकी सब कुछ मैं कह तो आया था।

मैं-- जी हां, बाइबिल के नाम से आपका जीवन-चरित्र और उपदेश दुनिया भर में प्रसिद्ध है। संसार की प्रायः सभी भाषाओं में बाइबिल की लाखों प्रतियाँ छप चुकी हैं।

म. ईसा ने आश्चर्य से कहा--तब तुमने मुझसे और सन्देश क्यों मांगे ?

मैं-- इसीलिये कि आज के जमाने के अनुसार आपके उपदेशों का अर्थ आपके अनुयायी समझें। पुराने पर नई छाप लगे।

म. ईसा-- अच्छा है, जैसा तुम उचित समझो करो।--यह कहकर वे मुसकराने लगे।

मैंने उन्हें प्रणाम किया और विदा ली।

१२--म. मुहम्मद का दर्शन

यीशु-मन्दिर से निकल कर मैं मुहम्मद-मन्दिर पहुँचा। मुहम्मद-साहिब एक चटाई पर बैठे हुए थे। मेरे पहुँचते ही वे बड़े प्रेमल स्वर में बोले--आओ भाई, आओ।

मैं उन्हें प्रणाम करके बैठ गया। वे बोले—दरबार में तुम्हें देखा था तुम्हारा निवेदन भी सुना था। जानना चाहता था कि तुम किस मुल्क से आये हो और अगर तुम्हें मालूम हो तो यह भी सुनना चाहता था कि मेरे बाद इस्लाम ने क्या किया?

मैंने कहा—मैं इसलाम के बारे में भी आपकी खिदमत में काफी अर्ज़ करना चाहता हूं। आपने अरब को इस्लाम सरीखा मज़हब देकर अरब की सूरत ही बदल दी, गोया यह कहना चाहिये कि आपने शैतानों और हैवानों की दुनिया को आदमियों की दुनिया बना दिया, जिसमें कभी कभी फरिश्ते भी दिखाई दिये।

मुहम्मद सा॰—यह सब सत्येश्वर की दया है। भला अल्लाह की मर्जी के बिना मैं क्या कर सकता था। आखिर मैंने किया ही क्या है। यहां से जैसा जैसा हुक्म पहुँचता गया वैसा वैसा ही मैं सुनाता गया। मैं सिर्फ एक पैगम्बर था, सन्देश-वाहक था।

मैं—जब कि लोग अल्लाह को नहीं मानते और अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से पैगम्बर से वैर करते हैं तब उन्हें अल्लाह का पैगाम सुनाना और उसके लिये जीवन खपा देना कोई कम महत्व की बात नहीं है।

मुहम्मद साहब ने जरा हलकी-सी रुखाई दिखाते हुए कहा—खैर, जाने भी दो। मेरी तारीफ़ की बात छोड़ो! सत्य-लोक में आने पर आदमी को तारीफ़ की भूख नहीं रह जाती।

मैंने मुसकराते हुए कहा—माफ़ कीजिये हजरत, यह सब मैं आपकी तारीफ के लिये ही नहीं कहता हूं अपनी राह की कठि-

नाई बता रहा हूं ।

हजरत मुहम्मद खूब हँसे और बोले—अच्छा ! अच्छा !! तुम इस तरह घुमा फिरा कर बात करते हो ! मेरे अपढ़पन का इम्तहान ले रहे हो !

मैंने जरा गम्भीर होकर कहा—माफ कीजिये हजरत, आप मुझे बुरी तरह शर्मिन्दा कर रहे हैं, मैं आपके कदम छूकर कह सकता हूं कि आपके अपढ़पन पर संसार के बड़े से बड़े पंडितों की पंडिताई न्यौछावर की जा सकती है।

हजरत ने भी जरा गम्भीर होकर कहा—अच्छा बुरा न मानना भाई ! मैंने तुमसे जरा मजाक ही किया है । खैर ! तुम अब अपने मुल्क के, इसलाम के और जो कुछ मालूम हो तो दुनिया के समाचार सुनाओ ।

मैंने कहा—इसलाम की जड़ तो आपके जमाने में ही अच्छी तरह जम गई थी आपके बाद तीन-चार खलीफों ने भीतर से और बाहर से इसलाम की खूब शान बढ़ाई हजरत उमर ने तो कमाल ही किया । पर बाद में वह बात न रही । हुकूमत की डोर हाथ में आने से खुदगर्जी और ऐयाशी ने इसलाम की रूह को धक्का पहुँचाया । हां ! बदन जरूर फूला, इसलाम का एक साम्राज्य खड़ा हो गया ! और इस तरह वह हिन्दुस्तान में भी पहुँचा ।

अच्छा ! इसलाम हिन्दुस्तान में भी पहुँचा ! हिन्दुस्तान के बारे में मैंने भी कुछ सुना था । एक तरह से वह मजहबों का देश है और बड़े बड़े पैगम्बर वहां पैदा होते रहे हैं, यह भी सुना

था। हर मुल्क और हर कौम के लिये अल्लाह रसूल भेजता है। हिन्दुस्तान तो बहुत बड़ा और आबाद मुल्क है वहां तो रसूल काफी आये, इसलिये वहां तो इसलाम को पहुँचने की जरूरत नहीं थी। मैं तो अरब-वालों के लिये भेजा गया था।

मैंने कहा—आदमी अरब का हो--चाहे हिन्दुस्तान का, उसके बहुत से सवाल करीब-करीब एक-से होते हैं, इसलिये एक जगह की बातों से दूसरे जगह के आदमी भी काफी सीख सकते हैं। हिन्दुस्तान ने इस्लाम से काफी सीखा है। आज हिन्दुस्तान में आठ-नव करोड़ आदमी इस्लाम को मानते हैं। इसलाम के आने से हिन्दुस्तान को बहुत फायदे हुए हैं।

मुहम्मद साहब ने मुसकराते हुए पूछा—और नुकसान कुछ नहीं हुआ ?

मैंने कहा—नुकसान भी हुआ है, पर नुकसान की जिम्मेदारी इसलाम पर नहीं है। वह उन खुदगर्ज बादशाहों सिपहसालारों और मौलवियों वगैरह पर है जिनने अपनी खुदगर्जी के लिये इसलाम की ओट ली और अपनी हरकतों से इसलाम का गलत रूप दुनिया के सामने रक्खा।

मुहम्मद साहब ने कहा—जब मैं अल्लाह का हुक्म बजाकर अल्लाह के कदमों में-सत्यलोक में—आ गया हूं तब मानव-नगर की कोई विशेष चिन्ता मुझे नहीं है; फिर भी तुम्हारी बातें दिलचस्प हैं, इसलिये तुम बताओ कि तुम्हारे मुल्क को इसलाम के आने से क्या क्या नुकसान हुआ और क्या क्या फायदा ? और इसलाम की आज वहां क्या शक्ल है ?

मैंने कहा—फायदा तो यह हुआ कि हिन्दुस्तान में फैली हुई जाति-पांति की बीमारी को काफी धक्का लगा। यद्यपि आज भी यह बीमारी वहां भयंकर रूप में है फिर भी इसलाम ने आठ-नव करोड़ आदमियों को करीब करीब इस बीमारी से छुड़ा दिया है। दूसरा लाभ जो इस्लाम से हुआ वह यह कि बहुत से अन्ध-विश्वासों को इसने हटाया।

मुहम्मद सा.—खैर, यह खुशी की बात है कि अरब के लिये भेजा गया पैगाम थोड़ा-बहुत हिन्दुस्तान के भी काम आ गया। पर इससे जो नुकसान हुआ उसे खास तौर पर सुनना चाहता हूं। भलाई से बुराई अगर बढ़ जाय तो भलाई किस काम की?

मैं—जी हां, आपका फर्माना बिलकुल ठीक है पर मैं यह अर्ज कर ही चुका हूं कि बुराई का कारण इस्लाम नहीं है—लोगों की खुदगर्जी है।

खैर, कुछ भी हो पर सुनूँ तो!

एक बुराई तो यह हुई कि हिन्दुस्तान के दो टुकड़े हो गये, हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़े और विदेशियों के गुलाम हो गये। इससे मुल्क की जायदाद, इज्जत, इल्म वगैरह सबका नाश ही हो गया समझिये। यद्यपि बहुत थोड़े मुसलमान ही बाहर से आये थे बाकी अधिकांश मुसलमान मूल में हिन्दू ही हैं, पर उनमें कुछ ऐसे विचार घुस गये हैं कि उनमें से बहुत से अपने को हिन्दुस्तानी ही नहीं समझते, इसलिये एक ही नगर या मुहल्ले में रहते हुए भी दोनों एक दूसरे का सिर फोड़ते हैं।

म. मुहम्मद—पर इसलाम तो शान्ति का पाठ पढ़ाता है, हर एक मजहब को उसके पैगम्बरों को उस की मजहबी जगहों की इज्जत करना सिखलाता है फिर समझ में नहीं आता कि झगड़ा किस बात पर होता है !

मैं—जी हां, इसलाम की जो बड़ी से बड़ी खूबी है मुसलमानों में उसी की सब से बड़ी कमी है। आज उनमें धर्मसमभाव नहीं है।

मुहम्मद सा.- अल्लाहका यह पैगाम मैं उन्हें सुना आया था कि हर मुल्क और हर कौम में पैगम्बर हुए हैं उनके नाम कुरान में आये हों या न आये हों उनको मानना हर मुसलमान का फर्ज है, फिर हिन्दुस्थान के मुसलमान अपने ही मुल्क के पैगम्बरों को क्यों नहीं मानते !

म—पहिली बात तो यह है कि कुरान को मुसलमान न तो पढ़ते हैं न समझते हैं। जो लोग समझते भी हैं वे अपनी खुदगर्जी के कारण उसका मतलब ठीक नहीं बतलाते, कुरान की आयतों के मतलब में तोड़ मरोड़ करके या कोई दूसरा बहाना बनाकर वे कुरान से उल्टे चलते हैं।

मुहम्मद सा.—कुरान में इतनी साफ बातें हैं कि कोई दूसरा मतलब निकालना चाहे तो मुश्किल ही है। भला, हिन्दुस्तान के पैगम्बरों को न मानने में वे क्या बहाना बनाते होंगे !

मैं—बहानों की क्या कमी है कोई कहने लगते हैं कि हिन्दू लोग तो म. राम म. कृष्ण को अवतार मानते हैं पर अल्लाह तो अवतार नहीं ले सकता, इस प्रकार जब वे पैगम्बर हैं नहीं और अवतार हो नहीं सकते तब हम उन्हें क्या माने ! और

क्यों माने !

मुहम्मद साहब यह तर्क सुनकर खूब हँसे, बोले—वाह भाई, वाह ! अक्ल की तो लोगों ने टांग ही तोड़ डाली। अरे हजरत ईसा को भी लोग ईश्वर का इकलौता बेटा कहते थे पर ईश्वर का तो कोई इकलौता बेटा है नहीं, इसलिये कुरान ने इकलौते बेटेपन की मनाई की थी, पर क्या हजरत ईसा पैगम्बर नहीं रहे ! कुरान में तो उन्हें साफ साफ लफ्जों में पैगम्बर कहा है और उनकी तारीफ़ में सूरे भरे पड़े हैं। कोई अवतार कहे कि बेटा कहे इससे क्या बनता बिगड़ता है, जिसकी जिन्दगी से अल्लाह का पैग़ाम मिलता है वह पैगम्बर है, भले ही लोग उसे कुछ भी कहें।

मैं—आप बिलकुल टीक फरमा रहे हैं पर मजहब के घमंड के मारे आपकी इन बातों को लोग पढ़ना ही नहीं चाहते। और जो पढ़ भी लेते हैं वे ऐसी ऐसी बेपर की उड़ाया करते हैं कि काफिर से काफिर आदमी भी ऐसी भद्दी और बेबुनियाद बातें नहीं कह सकता। कोई मौलवी अपनी पंडिताई बघारते हुए कहते हैं कि खुदा ने पैगम्बर तो हर मुल्क में भेजे हैं पर वे सब गुरु थे पर सब से पीछे मुहम्मद साहब को भेजा, वे जगद्गुरु हैं उनके आने से पुराने पैगम्बर रद्द हो गये। इसलिये अब पुराने पैगम्बरों को नहीं माना जा सकता।

मुहम्मद सा.—तोबा ! तोबा !! यह सब शैतान की करामात है और ऐसी करामात है जो अपनी सानी नहीं रखती। न तो मैंने कभी अपनी जिन्दगी में ऐसा कहा, न अल्लाह ने कभी मेरे मुँह से ऐसी बात कहलाई कि मैं अंतिम पैगम्बर हूं, या पुराने

पैगम्बर रद्द हो गये, या मैं जगद्गुरु हूँ और वे गुरु हैं। तुम मानव-नगर में जाओ और कुरान पढ़ो! तुम्हें मालूम हो जायगा और तुम समझ जाओगे कि जो शख्स मेरी तारीफ के बहाने ऐसी बे-सिरपैर की बातें कहता है वह बड़ा से बड़ा कुफ्र करता है। अल्लाह ने मुझसे बार-बार कहलाया कि 'अरबी कुरान हमने तुम्हारी तरफ नाजिल किया है, ताकि तुम मक्के रहने वालों को और जो लोग मक्के के आसपास बसते हैं उनको पाप से डराओ'--सूरे शूरा। मैं सारी दुनिया के लिये भेजा ही नहीं गया। कुरान से तुम्हें यह भी मालूम हो जायगा कि अरब की हालत के मुताबिक ही सब बातें उसमें भरी हुई हैं। और पैगम्बरों में तो भेद किया ही नहीं गया। 'देखो हम तो उन पैगम्बरों में से किसी एक में भी फर्क नहीं करते'— सूरे आलि उम्रान। "पैगम्बर के साथ दूसरे मुसलमान भी अल्लाह, उसके फरिश्तों और उसकी किताबों और उसके पैगम्बरों में से एक को भी जुदा नहीं समझते"—सूरे बकर। "जो हम पर उतरा और मूसा ईसा को मिला और जो दूसरे पैगम्बरों को उनके पर्वर्दिगार की तरफ़ से मिला, हम इनमें से किसी एक को भी जुदा नहीं समझते"—सूरे बकर। 'हर कौम के लिये रसूल मिला है' सूरे यूनिस। 'हम हरएक उम्मत में कोई न कोई पैगम्बर भेजते हैं'-सूरे नहल। 'कोई कौम ऐसी नहीं कि उसमें पैगम्बर न हुआ हो' — सूरे फातिर।

सत्यभक्त, मैं कहां तक बयान करूं। मुझे सख्त अफसोस होता है ऐसे लोगों की अक्ल पर जो इसलाम के नाम पर इस्लाम को इस तरह बदनाम करते हैं। इसलाम शान्ति और समानता का पाठ

पढ़ाता है, नम्रता उसकी खासियत है। कोई मजहब पूरा नहीं हो सकता है, पूरा तो सिर्फ अल्लाह है। सब मजहब अपने अपने जमाने और अपनी अपनी जगह के मुताबिक आते हैं, आते रहते हैं आते रहेंगे। मजहब का घमंड बुरा से बुरा घमंड है। इसलाम के मुताबिक तो लोगों को झुककर चलना चाहिये, झुककर बात करना चाहिये, सब मज़हबों और पैगम्बरों को अपनाना चाहिये।

मैंने कहा—हज़रत! आपकी और इसलाम की खूबी के एक टुकड़े को भी अगर लोग समझते तो कितना अच्छा होता। हिन्दुस्तान के हिन्दू तो इस बात को समझते ही नहीं है, पर अगर मुसलमान भी इस बात को समझते तो हिन्दू और मुसलमान दोनों में ही इसलाम का नूर चमकता होता, आदमियत का राज्य होता, बहिश्त दुनिया में ही आ जाता। खैर! मैं यह तो नहीं कहता कि कोई मुसलमान इस बात को नहीं समझता; सैकड़ों मौलवी और इसलाम के विद्वान इस बात को समझते हैं, पर दुःख इस बात का है कि वे इस बात का प्रचार नहीं करते। एकाध ने किया भी तो उसे कौन पूछता है? इस प्रकार जब हिन्दुस्तान के पैगम्बरों को ही वे नहीं मानते, तब उनके धर्मस्थानों को मानना—उनके धार्मिक उत्सवों में भाग लेना तो हो ही कैसे सकता है? नतीजा यह होता है कि एक दूसरे के धर्मस्थानों को नापाक करते हैं—तोड़ते फोड़ते हैं। मुसलमान मन्दिरों को मिटा डालना चाहते हैं और हिन्दू मसजिदों को।

हजरत मुहम्मद साहब के मुँह से एक गहरी आह निकली और साथ ही कहा—तोबा तोबा, यह सब मैं क्या सुन रहा हूं।

हिन्दुओं की बात मैं नहीं कहता, पर क्या मुसलमान भी मन्दिरों को तोड़ते हैं—नापाक करते हैं ? क्या उनकी इज्जत नहीं करते ?

मैंने कहा—जी नहीं, जब पैगम्बरों को ही नहीं मानते, तब मन्दिरों को क्या मानेंगे ? वहां तो उन्हें एक बहाना और है, वे कहते हैं—हिन्दू लोग बुतपरस्त हैं !

मुहम्मद सा.—क्या हिन्दू लोग बुतपरस्त हैं ?

मैंने कहा—जी नहीं, वे बुतपरस्ती नहीं करते, बुत को किताब की तरह काम में लाते हैं। वे मूर्ति-पूजक नहीं; मूर्ति-अवलम्बक हैं। जैसे मुसलमान लोग नमाज के समय किब्ला की तरफ़ मुँह करते हैं उसका यह मतलब नहीं है कि वे किब्ला को खुदा मानते हैं; उसी तरह हिन्दू लोग मूर्ति का उपयोग करते हैं—वे मूर्ति को खुदा नहीं मानते।

मुहम्मद सा.—ठीक ! ठीक ! मैं समझ गया, अरब में बुतपरस्ती थी, बुतों के लिये लोग एक दूसरे के प्राण लेते थे, कबीलों में बटे हुए थे, इसलिये अल्लाह ने मुझे बुतों को न रखने का पैग़ाम भेजा था। पर, हिन्दुस्तान में बुतों की वह हालत नहीं है—वे तो सिर्फ यादगाह के समान हैं।

मैंने कहा—जी हां, यही बात है, मेरा मतलब आपने और भी अच्छे लब्जों में कह दिया।

मुहम्मद सा.—समझ गया मैं, लोग लब्जों के गुलाम होते हैं—उसके मतलब के नहीं। मुझे अपने वक्त की एक बात याद आ गई। हज़रत हाजरा की याद में लोग मर्वा-सफा पहाड़ियों की यात्रा किया करते थे, पर वहां बुतें रक्खी थीं—इस पर से मुसल-

मानों ने उनकी यात्रा बन्द कर दी, तब फिर यहां से पैग़ाम गया कि इस तरह यात्रा बन्द न करना चाहिये, भले ही बुतें हैं तो रहें। तब लोगों ने यात्रा चालू की। लोगों में यह आदत है कि वे लब्ज के पीछे पड़ जाते हैं—उसका मतलब नहीं सोचते।

मैं– जी हां! यही तो परेशानी है और जब घमंड की पूजा करनी होती है तब लब्जों की गुलामी का कहना क्या है। मजहबी घमंड के कारण मुसलमान मन्दिर के पास भी न फटकेगा, बुतपरस्ती के नाम से चिढ़ेगा, पर कब्रों की पूजा करेगा-ताजियों की पूजा करेगा। मुल्क भर में हज़ारों कब्रें बनी हुई हैं जिनकी पूजा की जाती है, हज़ारों की संख्या में मुहर्रम में ताज़िया बनते हैं--इनके सामने सिर झुकाने में मुसलमानों को इतराज नहीं, पर हिन्दु-मन्दिर में जाने से इतराज है। घरों में बादशाहों के चित्र होंगे, बाप-दादों के चित्र होंगे, वेश्याओं के चित्र होंगे, पर नहीं होंगे तो राम-कृष्ण के, महावीर, बुद्ध, ईसा, और जरथुस्त के, यहां तक कि आपके भी नहीं।

मुहम्मद सा.—खैर! मेरे चित्र की ज़रूरत नहीं है, मैं खुद इसे पसन्द नहीं करता।

मैं– ठीक है, आपके लिये ज़रूरत नहीं है, आपका न पसन्द करना ही ठीक है। पर, जो लोग साधारण से साधारण आदमी के चित्रों से घर सजाते हैं—वे आपका भी चित्र न रक्खें, दूसरे पैगम्बरों के चित्र न रक्खें—यह कैसी बात है! दुनिया भर का पाप शरियत के खिलाफ़ नहीं, कब्र ताजिया और दूसरों के चित्रों में बुतपरस्ती नहीं, पर आपके और दूसरे पैगम्बरों के चित्र

में—मूर्ति में बुतपरस्ती आ जाती है, शरियत की दुहाई दी जाने लगती है।

मुहम्मद सा.—असल में वे शरियत का मतलब नहीं समझते। और शरियत भी तो जमाने के अनुसार बदलती है। मेरी छोटी-सी जिंदगी में और सिर्फ अरब के भीतर ही आयतें मन्सूख हुई थीं और दूसरी उतारी गई थीं। मुसलमान इस बात को नहीं समझते थे, तब यहां से कई बार पैग़ाम गया था कि 'हम कोई आयत मन्सूख कर दें या जहन से उतार दें तो उससे बेहतर नाज़िल कर देते हैं।' जब छोटे-से जमाने में इस तरह आयतें मन्सूख करने की नौबत आ सकती है तब इस हज़ार-डेढ़ हज़ार साल में और दूसरे मुल्क में तो और भी अधिक मौके आयतें मन्सूख करने के आ सकते हैं।

मैं—जी हां, आप तो काफ़ी साफ बात कहते हैं, पर अगर इतनी बात को वे अमल में न ला सकें तो इतना तो कर ही सकते हैं कि वे यादगाह के रूप में सब मजहबों के धर्म-स्थानों की इज्जत करें--उनका उपयोग करें।

मुहम्मद सा.—हां, सच्चे मुसलमान का यही फर्ज है। अगर हिन्दुस्तान में करोड़ों मुसलमानों के होने पर भी मजहबी इत्तफ़ाक नहीं है, आपस में मुहब्बत नहीं है, मुल्क के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं तो कहना चाहिये कि हिन्दुस्तान में इसलाम की जान है ही नहीं, सिर्फ उनकी लाश है। सत्यभक्त, मैं तुमसे सच कहता हूं कि मुझे हिन्दुस्तान में इसलाम के जाने से होने-वाले फायदों की बनिस्बत नुकसान ही ज्यादा दिखाई दे रहा है। मेरे

दिल को इससे चोट ही पहुँच सकती है।

मैंने कहा—हजरत, आपके दिल को चोट पहुँचना ठीक ही है, पर फिर भी गुस्ताखी माफ हो, मैं नहीं मानता कि हिन्दुस्तान में इसलाम के आने से नुकसान ज्यादा हुआ है। इसलाम हिन्दुस्तान के लिये ज़रूरी था और ज़रूरी है। अगर इसलाम न आया होता तो हिन्दू-धर्म मुर्दा हो गया होता। उसे जगाया-उठाया तो इसलाम ने ही। हां, आज हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे को नहीं समझ पाये हैं, पर अगर मुसलमान सच्चे-मुसलमान बन जायँ और हिन्दू सच्चे-हिन्दू बन जायँ तो सारा झगड़ा मिट जाय। इस्लाम का भी नूर चमकने लगे।

हजरत क्षणभर चुप रहे। फिर बोले—सत्यभक्त, मैं सच कहता हूं कि मैं नहीं समझता कि तुमसे बढ़कर मुसलमान मानव-नगर में कोई होगा।

मैंने हँसते हुए कहा—मगर मैं मांस नहीं खाता, न गोवध या किसी दूसरे जानवर का वध पसन्द करता हूं। हिन्दुस्तान में शाक-सब्जी इतनी है कि जानवरों को मारने की ज़रूरत ही नहीं, फिर मजहब के नाम पर तो पशु-वध करना और भी ठीक नहीं समझता। ऐसी हालत में मैं मुसलमान कैसे कहा जा सकता हूं?

हजरत जरा गम्भीर होकर बोले—सत्यभक्त, क्या तुम समझते हो कि इसलाम मांस खिलाने के लिये आया था? क्या इसलाम ने हज की यात्रा में मांस खाने की सख्त मनाई नहीं की? क्या जानवरों को कष्ट न देने की बात नहीं कही? मेरा मकसद क्या तुम नहीं समझते? मेरा बश चलता तो अरब में अंडा फोड़ने तक

की मनाई कर देता। पर क्या करता, कुर्बानी का जो आम रिवाज यहां था उसे मैं पूरी तरह नहीं रोक सकता था, जितना रोका जा सकता था—उतना रोका गया। पूरा रोकने की कोशिश करता तो कुछ भी न रोक पाता।

मैंने कहा—हजरत, गुस्ताखी माफ करें। मुझे आपके पाक मक़सद का इल्म है। मैं यह भी जानता हूं कि कुर्बानी आदि पूजा-पाठ के विधान लोगों के रहन-सहन के ढंग पर ही बनाये जाते हैं—बन जाते हैं, ऐसी जगह कुर्बानी का कारण हिंसकता नहीं; किन्तु दान होता है। पर हिंदुस्तान के मुसलमान इस्लाम के कुरान के या आपके मक़सद को नहीं समझते, वे तो मांस खाने गाय की कुर्बानी करने पर बे-ज़रूरी जोर देते हैं। इससे हिन्दुस्तान का सवाल और टेढ़ा हो गया है और इसलाम की इज्जत को भी धक्का लगा है। हिन्दुस्तान के दो महान् पैगम्बर म. महावीर ने और म. बुद्ध ने जानवरों को मारने की सख्त मनाई की और उसे हिन्दुस्तान ने मंजूर भी कर लिया, यहां तक की जैन-बौद्धों की संख्या में काफी कमी हो जाने पर भी हिन्दुस्तान की आम जनता मांस खाने के विरुद्ध रही। अब अधिकांश प्रान्तों में मांस खाना नीची जाति की निशानी है, ऐसी हालत में मांस खाने-वाले और उस पर जोर देने-वाले मुसलमानों को ऊंचा समझना कठिन हो गया है, इससे इसलाम का अपमान-सा हो रहा है।

मुहम्मद सा०—सत्यभक्त, तुम्हारी बातें सुनकर मेरा अफ़-सोस बढ़ता ही जाता है। मैं समझ नहीं पाता कि जब मुल्क में अनाज और शाक सब्जी काफी मिलती है और आम तौर पर

मांस खाना अच्छा नहीं समझा जाता तब वहां के मुसलमान क्यों इस बे-ज़रूरी चीज से चिपटे हुए हैं ! कुर्बानी करना है तो वे शाक-सब्जी की करें जानवर की क्यों करते हैं ?

मैं—इस कुर्बानी के कारण न जाने कितने हिन्दू मुसलमानों की जिन्दगी खत्म हो चुकी है। करोड़ों हिन्दू-मुसलमानों के दिल फट गये हैं। बात यह है कि हिन्दुस्तान में खेती-पाती आना-जाना गाय-बैल के सहारे होता है। देश की माली हालत का दारमदार गाय बैलों पर है, इसलिये हिन्दू लोग गाय बैलों को बड़ी इज्जत की निगाह से देखते हैं और उसे मार डालना या खाना हराम समझते हैं और जब मुसलमान गाय की कुर्बानी करते हैं तब झगड़ा होता है।

मुहम्मद सा.—तोबा, तोबा ! पहिले तो जानवर का मारना ही बेजा है; फिर जब उससे खेतीपाती का नुकसान होता हो, एक दूसरे के दिल फटते हों, झगड़े होते हों तब हराम ही है। मुसलमानों को चाहिये कि वे शरीयत का मतलब समझें और जमाने के अनुसार उसे बदल भी दें आखिर खुदा ने अक्ल किस काम के लिये दी है ? मुझे गाय की कुर्बानी की बात से सदमा पहुँचा है !

मैं—आपके नरम दिल को सदमा पहुँचना ठीक ही है। पर इसमें हिन्दुओं का भी काफी कुसूर है। कसाई-खानों में कितने गाय बैल मारे जायँ—हिन्दुओं को इसकी चिन्ता नहीं होती, सिर्फ मुसलमान जब त्यौहार आदि पर गाय की कुर्बानी करते हैं तभी हिन्दू उमड़ते हैं। तब मुसलमान सोचने लगते हैं कि इससे हमारा हक मारा जाता है—हम हक के लिये लड़ेंगे, इसलिये वे

लड़ते हैं।

मुहम्मद सा.—यह सब शैतान की करामात है। हिन्दुओं की इसमें गलती हो सकती है, पर यह भी तो हो सकता है कि मुसलमान लोग गाय का जुलूस निकालकर चिढ़ाते हों इसलिये फसाद बढ़ जाता हो! शैतान इसी तरह लोगों के दिल में घुसकर फिसाद कराता है। मुसलमानों को शैतान की इन चालों से खबरदार रहना चाहिये।

मैंने कहा—हजरत, आपने ठीक बात पकड़ी। गाय के और बाजों के जुलूस ने हिन्दुस्तान को तबाह कर दिया है।

मुहम्मद सा.—बाजों के जुलूस का क्या मतलब?

मैं—हिन्दुस्तान में रिवाज है कि हरएक धार्मिक या सामाजिक उत्सव में बाजे बजाये जाते हैं। मसजिद के पास बाजे बजने से मुसलमानों को इतराज होता है। इसके लिये हिन्दू-मुसलमान दोनों खूब सिर फोड़ते हैं।

मुहम्मद साहब ने ताज्जुब से कहा—अच्छा! बाजे बजाने में क्या नुकसान है!

मैं—ऐसा कोई खास नुकसान तो नहीं है। हां, नमाज पढ़ते समय बाजों की आवाज़ से नमाज में खलल होता है।

मुहम्मद सा.—इसीलिये शायद हिन्दुस्तान के मुसलमान लोग बाजों से सख्त परहेज रखने लग गये हैं!

मैं—जी नहीं, बाजों से परहेज तो उन्हें भी नहीं है। मुहर्रम में रात-रात बाजे बजाकर सारे शहर की नींद हराम कर देते हैं और भी उत्सवों के समय बाजे बजाते ही हैं। सवाल बाजों के

परहेज का नहीं है, सवाल एक दूसरे को या एक दूसरे के धर्म को नीचे दिखाने का है।

मुहम्मद सा.—यह तो अल्लाह को नीचे दिखाने के समान हुआ इसकी बनिस्बत तो नमाज न पढ़ना ही अच्छा। अथवा इस प्रकार दिल लगाकर पढ़ना चाहिये कि एक क्या हजार बाजे भी नमाज में खलल न डाल सकें।

मैं—आपका फर्माना बिल्कुल ठीक है। पर सारा सवाल घमंड का है। हिन्दू सोचते हैं—नमाज में खलल पड़े तो भले पड़े, बाजे बन्द करके हम अपनी शान में बट्टा क्यों लगावें? और मुसल्मान सोचते हैं कि नमाज के बहाने हिन्दुओं को नीचा दिखाने का मौका हम क्यों खोवें? इसीलिये यह झगड़ा है। यों बाजा एक परेशानी ही है, मेरा वश चले तो मैं बस्ती में बाजा बजाने पर टेक्स लगादूं और जहां व्याख्यान हो रहे हों, पढ़ाई हो रही हो, पूजा नमाज या प्रार्थना हो रही हो—वहां बाजे बजाना बिलकुल बन्द कर दूं। जब कभी तकरीर करते करते बाजों का जुलूस आ जाता है और मुझे तकरीर बन्द करके खड़ा रह जाना पड़ता है तब सुनने-वालों को और मुझे कितनी परेशानी होती है—यह मैं अच्छी तरह जानता हूं।

मुहम्मद सा.—तुम्हारा यह कहना बहुत ठीक है पर जब तक बाजों का यह नियम नहीं बना है तब तक बाजों के रोकने मे जबर्दस्ती न की जाय, इसके लिये झगड़े न किये जायँ—यही ठीक है; क्योंकि इस्लाम का अर्थ शान्ति है।

मैं—हजरत, आप बिलकुल ठीक फरमाते हैं, वे हिन्दू हों

या मुसलमान सबको इसलाम का ठीक मतलब उसकी असलियत समझने की ज़रूरत है। अगर सब इसलाम को समझने लगें तो देश का उद्धार हो जाय, मुसलमानों की तरक्की हो जाय, इसलाम की इज्जत में चार चांद लग जाय। अगर आज के जमाने को देखते हुए आप कुछ पैगाम दें तो आपकी बड़ी इनायत हो। मैं आपके पैगाम हिन्दुस्तान के हिन्दू-मुसलमानों को सुनाऊंगा।

मुहम्मद सा.——हिन्दुओं के लिये तो मैं क्या पैगाम दूं, उनके लिये तो तुम दूसरे पैगम्बरों से सन्देश ले ही जा रहे होगे। हां, मुसलमानों के लिये कुछ कह देना चाहता हूं।

मैं——खैर, आप मुसलमानों के लिये कहिये, पर आपके पैगाम से सभी फायदा उठायेंगे-ऐसी उम्मीद है।

मुहम्मद साहब ने कहा——अच्छा! जब तुम कहते हो तो मैं कुछ बातें कह देता हूं।

१—कहो कि हर मजहब की पाक जगहों की इज्जत करें, उनके पैगम्बरों की तारीफ करें, हज़रत राम, ह. कृष्ण, ह. महावीर ह. बुद्ध, ह. ईसा वगैरह सबका अदब करें। किसी को गुरु किसी को या मुझे जगद्गुरु कहकर पैगम्बरों में भेद न करें।

२—बुतपरस्ती न करें पर बुत या तसवीर का किताब की तरह या यादगाह की तरह इस्तैमाल करना हो तो अवश्य करें। खासकर मुहब्बत बढ़ाने के लिये तो जरूर करें।

३—मांस खाना बिलकुल बन्द किया जाय। जब हिन्दुस्तान में शाक-सब्जी काफी मिलती है तब जानवरों की हत्या क्यों की जाय?

४–गाय की हत्या तो किसी भी हालत में करना ही न चाहिये; किन्तु मजहब के नाम पर दूसरे जानवरों की हत्या भी न करना चाहिये।

५–बाजे पर किसी तरह का फिसाद न करें। जैसा तुम मन्दिरों का अदब करोगे वैसा हिन्दू मसजिदों का अदब करेंगे। अगर न करेंगे तो अल्लाह सब सुनता जानता है, तुम फिसाद करके क्यों शैतान के बन्दे बनते हो!

६–कुरान के लब्जों के गुलाम न रहें किन्तु उसका मतलब समझें और जमाना देखकर हुक्मों की तामील करें।

७–मुल्क की सब कौमों के साथ मिलकर रहें खासकर सियासी मामलों में मजहबी बातों के नाम पर फूट न फैलाएँ।

८–मुल्क को आजाद और खुशहाल बनाने के लिये जी-जान से कोशिश करें। इस्लाम गुलामों का मजहब नहीं है।

९–ऐसी कोशिश न करें जिससे मुल्क के टुकड़े-टुकड़े हों या सब मिल-जुलकर न रह सकें।

बस! और क्या कहूं। कुरान में तो साफ़-साफ़ सभी कुछ लिखा हुआ है। क्या तुमने कुरान पढ़ा है?

मैं—जी हां, एक बार पढ़ा तो है।

मुहम्मद सा.—तो एक बार फिर पढ़ जाना और उसमें जो बातें अरब के लोगों के लिये और खासकर उस मौके लिये थीं उन्हें छोड़कर जो बातें आज के जमाने के लिये और खासकर तुम्हारे मुल्क के लिये मौजूं हों उनका संग्रह कर डालना। और हिन्दू और मुसलमानों को बताना, मैं यकीन करता हूं कि हिन्दुओं

के दिल में इसलाम के बारे में या मुसलमानों के बारे में जो गलत-फहमी है वह इससे दूर हो जायगी और मुसलमान भी अपने मजहब को भूलकर जो गलतियाँ कर रहे हैं, वे उन्हें छोड़ देंगे।

मैं—आपके हुक्म की पाबन्दी की मैं ज़रूर कोशिश करूंगा। और आपकी दुआ से कामयाबी भी होगी।

मुहम्मद सा.—सच्ची कामयाबी तो अल्लाह के हाथ में है। हां, कोशिश करना आदमी का काम है, सो तुम करोगे ही।

मैं—जी हां।

मुहम्मद सा.—मुझे तुमसे मिलकर बहुत खुशी हुई। मैं अल्लाह से आरजू करूंगा कि वह तुम्हें कामयाबी बख्शे।

मैंने झुककर उन्हें सलाम किया और बिदा ली।

१३-महात्मा मार्क्स का दर्शन

मुहम्मद-मन्दिर से निकलकर मैं मार्क्स-मन्दिर की ओर बढ़ा। यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य और प्रसन्नता हो रही थी कि म. मार्क्स जिनने धर्म और ईश्वर को अफ़ीम और पूँजीवादियों का हथियार कहा, आज सत्य-लोक में विराजमान हैं। मैं सोच रहा था कि देखूँ धर्म के बारे में अब उनके क्या विचार हैं ! जब मैं पहुँचा तब जेनीदेवी के साथ वे कुछ चर्चा कर रहे थे। पहुँचते ही मैंने मार्क्स दम्पति को प्रणाम किया। उनने कहा—आओ सत्यभक्त, एक नास्तिक तुम्हारा स्वागत कर रहा है।

मैंने कहा—जन-कल्याण के लिये जीवन भर तपस्या करने-वाला, गरीबी के सामने सिर न झुकाने-वाला, देश-देश की सरकारों

के कोप को धैर्य के साथ सहन करनेवाले अगर नास्तिक हैं, तो आस्तिक कौन कहलायगा ! ऐसी नास्तिकता पर सैकड़ों आस्तिकताएँ न्योछावर की जा सकती हैं।

म. मार्क्स—पर धर्म और ईश्वर के बारे में मेरे क्या विचार हैं—यह तो तुम्हें मालूम ही हैं। फिर भी तुम मुझे आस्तिक समझते हो।

मैंने कहा—जी हां ! स्वार्थी पुजारियों निरंकुश विलासी राजाओं और मुफ्तखोर पूँजीवादी लुटेरों के जिस धर्म और ईश्वर को आपने अफीम कहा है—वह तो मैं भी मानता हूं। पर सत्य को न्याय-नीति को तो आपने अफीम नहीं कहा; बल्कि इसी के लिये तो आपने जीवन दिया, इसलिये वास्तव में आप न तो निरीश्वरवादी हैं, न धर्म विरोधी।

म. मार्क्स ने प्रसन्न होकर कहा—तुम से मुझे ऐसी ही आशा थी। बात यह है कि स्वार्थियों ने 'धर्म और ईश्वर' शब्दों का जैसा दुरुपयोग किया है—उस के लिये मुझे इन दोनों का विरोध करना ज़रूरी था।

मैंने कहा— यह ठीक ही था। कभी कभी ऐसा मौक़ा आ जाता है कि किसी चीज़ के दुरुपयोग को रोकने के लिये उसे हटाने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता ही नहीं रह जाता। म. मुहम्मद को देखिये न, मूर्ति का दुरुपयोग रोकने के लिये उन्हें मूर्ति हटाना पड़ी, यों कुछ वे मूर्ति के सदुपयोग के विरोधी नहीं थे। देशकाल के अनुसार ऐसा करना ही पड़ता है।

म. मार्क्स— बस, तुम मेरा मतलब अच्छी तरह समझ गये। सच्चे धर्म का या सत्येश्वर का मैं विरोधी नहीं था, अगर होता तो

क्रम से और कैसे, और किस रूप में उस का अमल होगा?—यह बात अभी सन्देहास्पद है। पर हां! किसी न किसी रूप में होगा अवश्य। इस समय तो वहां सब से बड़ी बाधा विदेशी शासन है। किसी तरह यह हटे, तब धार्मिक सामाजिक और आर्थिक कार्य-क्रम आगे आयें।

म. मार्क्स— तुम्हारा भी इस विषय में कुछ काम करने का विचार है कि नहीं?

मैं— आर्थिक समस्या को हल किये बिना कोई भी सन्देश पूरा नहीं कहा जा सकता। जिन को लोग धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय समस्याएँ कहते हैं—उन सब में आर्थिक समस्या रहती ही है। इसीलिये प्रायः सभी तीर्थंकर पैग़म्बर आदि ने धन-संग्रह को परिग्रह को पाप कहा है। हां! यह बात अवश्य है कि उन का यह उपदेश व्यक्तिगत जीवन में ही कुछ असर दिखा सका शासन और समाज पर प्रत्यक्ष रूप में कोई गहरा असर न डाल सका। बात यह है कि यन्त्रवाद की प्रबलता न होने से पुराने तीर्थंकर पैग़म्बर आदि के जमाने में उस की इतनी आवश्यकता भी नहीं मालूम होती थी, पर धन-संग्रह पाप है—इस तत्व को पहिले से ही मान लिया गया है। मैं सोचता हूं कि हिन्दुस्तान को अब यह पाठ युग के अनुरूप अवश्य पढ़ना चाहिये।

म. मार्क्स— हां! भले ही इस में थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो।

मैं— सो तो ठीक है, मैं तो साम्यवाद को निरतिवाद के ही रूप में देखता हूं। जिस में पूँजीवाद को जितने तरह से चोट पहुँचाई जा सकती हो—पहुँचाई जायगी, जिस से उस के प्राण निकल जायँ।

म. मार्क्स– ठीक है, शब्द में क्या रक्खा है अर्थ चाहिये । निरतिवाद शब्द भी काफ़ी अच्छा है । इस से विरोधियों को कम चिढ़ पैदा होगी । देश काल के अनुसार परिवर्तन करने के लिये यह शब्द है भी लचीला ।

मैं– देखूं आप के आशीर्वाद से क्या कर पाता हूं ! मैं बहुत छोटा आदमी हूं ।

म. मार्क्स– उँह ! यह व्यर्थ की चिन्ता है । मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार काम करना चाहिये । आज दुनिया की दृष्टि में छोटा-बड़ा होने का कोई मूल्य नहीं । क्षुद्रता का जितना अनुभव मुझे करना पड़ा है–उतना शायद तुम्हें न करना पड़ेगा ।

मैं– जी हां, सोच तो यही रहा हूं कि सत्येश्वर की सेवा करने में जो आत्म-सन्तोष है–वही सब से बड़ी सार्थकता है । उस से कुछ न कुछ दुनिया का भला होगा ही, और न होगा तो इस की चिन्ता में मैं क्यों घुलूं ! उन का सेवक होना, अपना जीवन उन के चरणों पर चढ़ जाना ही सब से बड़ी महत्ता है ।

म. मार्क्स– ठीक है, अमर आशा का मंत्र तुम्हें मिल गया है । अब तुम्हें असफलता भी निराश न कर सकेगी ।

मैं– आप के आशीर्वाद से अगर मैं निराशा पर विजय पा सकूं तो मैं समझूंगा कि मेरा जीवन सफल हो गया । काम तो जो होगा सो होगा ।

म. मार्क्स– नहीं, काम भी तुम कर ही जाओगे, भले ही तुम उस का फल जीवन में न देख सको । युग के अनुरूप सत्येश्वर का सन्देश सुनाओ, बस जीवन सफल है ।

मैं— जी हां ! पर मेरी इच्छा है कि आपकी तरफ़ से भी कुछ सन्देश मिल जायँ ।

म. मार्क्स— क्या इस की कुछ ज़रूरत है ही ?

मैं— जी हां ! इस बात की ज़रूरत का निर्णय आप मुझ पर ही छोड़िये ।

म. मार्क्स— ठीक है, ऐसा ही सही । तो दो-चार बातें सुन लो !

१—कहो कि, जब तक दुनिया में पूँजीवाद और उस का अनुचर साम्राज्यवाद है, तब तक दुनिया में शान्ति नहीं हो सकती।

२—साम्यवादी सरकारों को चाहिये कि वे इस बात की कोशिश करें कि दुनिया में से पूँजीवाद और साम्राज्यवाद नष्ट हो । अगर ऐसा न हो तो साम्यवाद का टिकना भी मुश्किल हो जायगा ।

३—राष्ट्रीयता की दीवारें गिराई जायँ और मजदूरों का संसार-व्यापी संगठन किया जाय ।

४—श्रम को तुच्छता की दृष्टि से न देखा जाय । बिना श्रम के खाना—हराम का खाना है ।

५—हरएक आदमी को इज्जत के साथ जीवन-निर्वाह की काफ़ी सामग्री मिले, इस मुख्य बातको ध्यानमें रखकर साम्यवादके रूप देशकाल के अनुसार प्रचलित किये जायँ ।

६—व्यक्ति समाज के लिये है—इस बात को मानते हुए भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर कमसे कम सामाजिक दबाव पड़े, इस बातका ख़याल रक्खा जाय ।

७—सब राष्ट्र मिलकर एक ऐसे मानव-राष्ट्र की नींव डालें

जिस में मनुष्य-मनुष्य का भेदभाव विरोध आदि बिलकुल न हो, जिस से मनुष्य की शक्ति पारस्परिक झगड़ों में न लगकर प्रकृति से लाभ उठाने में लगे।

बस ! और तो विशेष कुछ कहने की जरूरत नहीं मालूम होती। तुम्हारे अनुरोध से कुछ बातें कह दी हैं।

मैंने कहा— इस कृपा के लिये धन्यवाद। और आप ने जो उत्साह दिया है उस के लिये किन शब्दों में धन्यवाद दूं !

म. मार्क्स ने मुसकराते हुए कहा—बिना शब्दों का ही धन्यवाद रहने दो न !

मैंने मुसकराकर उन्हें प्रणाम किया, और जेनीदेवी की तरफ़ देखकर कहा—अच्छा देवीजी ! विदा लेता हूं। महात्माजी ने तो मौन रूप में ही धन्यवाद लिया, पर आप अपना आशीर्वाद तो शब्दों में ही दीजिये।

जेनीदेवी—जहां लोग दिलों की भाषा समझते हैं वहां शब्दों की भाषा में कोई जान नहीं रहती। फिर भी मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूं कि तुम्हारी पत्नी तुम्हारा साथ दे और उसे तुम्हारी चिड़चिड़ाहट सहने की शक्ति मिले।

यह सुनकर महात्माजी और मैं खूब जोर-जोर से हँसे। जेनीदेवी मुसकराने लगीं। तब मैंने कहा--मुझ में चिड़चिड़ाहट न हो, क्या ऐसा आशीर्वाद नहीं दे सकतीं ?

जेनीदेवी—यह आशीर्वाद तुम अपने महात्माजी से माँगो।

मैंने म. मार्क्स की तरफ़ कुछ अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा, उन ने जेनीदेवी की तरफ़ दृष्टि रखकर मुसकराते हुए कहा—जेनीदेवी के

आशीर्वाद के बाद इस दूसरे आशीर्वाद की जरूरत तो नहीं मालूम होती ।

बात सुनकर जेनीदेवी भी खिलखिला पड़ीं । मैंने मार्क्स दम्पति को प्रणाम कर विदा ली ।

(१४) म. जरथुस्त का दर्शन

मार्क्स मन्दिर से निकलकर मैंने जिज्ञासादेवी से कहा—देवि, खास खास व्यक्ति-देवों से तो मैं मिल ही चुका हूँ । अब मैं भक्ति-कुटीर लौटना चाहता हूं ।

जिज्ञासा—तो चलो ।

हम लोग भक्त-नगर से बाहर निकलने-वाले ही थे कि मेरी नजर दूर पर घूमते हुए एक महात्मा पर पड़ी । मैंने जिज्ञासादेवी से पूछा—वे कौन महात्मा हैं ?

जिज्ञासादेवी ने कहा— वे हैं म. जरथुस्त, पारस के पैगम्बर

मैं— अरे ! तब तो इन से भी मिलना जरूरी है । मानव-नगर में मेरे पड़ोस में ही पारसियों की बहुत बस्ती है । तब उन के पैगम्बर से दो बातें कर के उन के लायक कुछ सन्देश ले ही लेना चाहिये ।

जिज्ञासा— ठीक है, जितना जल्दी बने उन से भी मिल लो ।

हम लोग जरा जल्दी-जल्दी आगे बढ़े । म. जरथुस्त भी घूमते हुए अपने मन्दिर के द्वार तक पहुँच गये थे । मैंने द्वार पर पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया ।

उन ने मुसकराते हुए कहा— क्यों सत्यभक्त ! क्या दर्बार से निकलकर भक्त-नगर की सैर कर रहे थे ?

मैंने कहा– जी हां !

म. जरथुस्त– कहां कहां गये थे ?

मैं– म. राम, म. कृष्ण, म. महावीर, म. बुद्ध, म. ईसा, म. मुहम्मद, म. कार्लमार्क्स से मिल आया हूं।

म. जरथुस्त– मालूम होता है इन लोगों के अनुयायी तुम्हारे देश में हैं !

मैं– जी हां, अनुयायी तो आपके भी हैं, पर दुर्भाग्य से उन से बहुत कम परिचय है।

म. जरथुस्त– तुम किस देश से आ रहे हो ?

मैं—भारतवर्ष से।

म. जरथुस्त– भारतवर्ष में मेरा मज़हब कैसे पहुँचा ?

मैं—पारस में राज्यक्रान्ति हो जाने पर अपने मज़हब की रक्षा न देखकर बहुत से पारसी हिन्दुस्तान आ गये थे, वे ही आप के अनुयायी हैं।

म. जरथुस्त—पारस में क्या मेरे अनुयायी नहीं हैं ?

मैं—सुनते हैं कि दो-चार खेड़ों में पांच सात हज़ार आदमी बच गये हैं। हिन्दुस्तान में ज़रूर उन की संख्या एक लाख के क़रीब है और वे खुशहाल भी हैं !

म. जरथुस्त—पर उन से तुम्हारा परिचय क्यों नहीं ?

मैं– मैं यद्यपि पड़ौस में रहता हूं और एकाध पारसी से परिचय भी है, पर सामाजिक और धार्मिक परिचय नहीं है। इस में कुछ गल्ती तो मेरी है और दूसरी बात यह है कि पारसी-समाज धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से कुछ अलग-सा रहता है। यद्यपि

भारतवर्ष को उसने अपनी मातृभूमि बना लिया है; फिर भी वहां के समाज और धर्म से अलग-अलग ही हैं।

म. जरथुस्त– भारतवर्ष की और ईरान की संस्कृति तो एक ही है। मेरे जमाने की पारसी-भाषा और संस्कृत-भाषा बिलकुल सगी बहिनें हैं, धर्म भी करीब-करीब एक है, फिर इतना अन्तर क्यों?

मैं–पुराना आर्य-धर्म तो अब भारतवर्ष में है नहीं, अब तो उसका परिवर्तित परिवर्द्धित और सम्मिश्रित रूप हिन्दू-धर्म है। पारसी उसके साथ कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाये हैं।

म. जरथुस्त—यह कुछ आश्चर्य और खेद की बात है। जब मैंने सत्येश्वर या अहुरमज्द के हुक्म से नया मजहब खड़ा किया तब फारस में माजदयस्नी मजहब फैला हुआ था। जिसके अनुसार गुलामी करने की, झूठ बोलने की, बदनियत से किसी का कर्ज अदा न करने की, जादूटोने की, सदाचारी आदमियों को सताने की, नशा करने की, अक्षन्तव्य अपराध करने की, बहुत ज्यादा ऋण लेने की, इसी तरह के और भी पापों को करने की मनाई की गई थी। मैंने इस मजहब को मान्य रक्खा। हां! इसमें कुछ बातें और मिला दीं! जैसे, मन को पवित्र रक्खो, वचन को पवित्र रक्खो, शरीर को पवित्र रक्खो, पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति आदि किसी को न सताओ, सताया हो तो उसकी क्षमा माँगो। चार प्रकार की बुराइयों से बचो १– बुरे मनुष्यों से, २– बीमारी के कारणों से, ३– अनीति से, ४– आबादी कम करने के कारणों से (वर्षा आदि कम होने के कारणों से)। मैंने विस्तार से ४१ तरह की बुराइयाँ

बताई थीं, उन से बचने बचाने का उपदेश दिया था। खेती करने व्यापार उद्योग करने आदि का उपदेश दिया था। संसार जिस से आबाद हो सुखी हो उन सब को अपनाने की और जिस से नाश हो दुखी हो उसे हटाने की प्रेरणा की थी। इस प्रकार यह सुधरा हुआ माज़्दयस्नी मज़हब अहुरमज्दी जरथोस्ती धर्म कहलाया। मेरे धर्म की नींव ही पुराने और नये मज़हब के मेल पर खड़ी हुई थी। तब पारसी लोग हिन्दुस्तान में मज़हब का मेल क्यों नहीं करते ?

मैं– मैं उन के बारे में कुछ कम जानता हूं इसलिये कुछ नहीं कह सकता। हां ! इतना कह सकता हूं कि ऐसी बातों में पारसी-समाज बहुत रूढ़ि-पूजक है, अपनी जातीयता को अलग बनाये रखने की चिन्ता में है और उस का अधिक से अधिक ध्यान पैसा विलास और फैशन में है।

म. जरथुस्त– सत्यभक्त, तुम जाकर उन से कहो कि–वे ऐसा न करें ! नये-पुराने धर्मों के समन्वय और सम्मिलन में ही जरथोस्ती धर्म की विजय है, इस की तरफ़ सब पारसी ध्यान दें और इस प्रकार सर्व-धर्म-समभावी बनें।

अपनी जातीयता को अलग न रक्खें। भारतीय और पारसी मूल में भी एक हैं, और जब सैकड़ों वर्ष से पारसी लोग भारतवर्ष में रहते हैं तब भारतीयों से हर तरह का सामाजिक सम्बन्ध बनाये रक्खें।

जीवन में सादगी लायें !

खेती करने पर मैंने बहुत जोर दिया था, उस पर ध्यान दें !

सा, डर-सा लगा हुआ है।

सत्येश्वर— संकोच डर आदि इकदम बुरे ही नहीं होते मेरे दर्बार में उन को भी जगह है, पर यहां दुर्गुण देवों को गुणदेवों का अनुचर बनकर रहना पड़ता है, जिस से उन का दुरुपयोग न हो। तू संकोच और भय का दुरुपयोग न कर सकेगा।

मैं— आप के सामने मैं दुरुपयोग सदुपयोग कुछ नहीं जानता मैं तो आप के हुक्म का ताबेदार हूं। मन में जो भाव आया वह आप के सामने कह दिया, पर करना तो वही है जो आप का हुक्म होगा।

सत्येश्वर— तब जा! दीनता छोड़, और मानव-नगर में मेरे सन्देश सुना, उन सन्देशों का पालन हो इसके लिये कोशिश कर, एक संगठन कर! निराशा को सदा ठुकराता रह।

मैंने अपना सिर भगवान-भगवती के चरणों पर रखकर कहा— जो हुक्म, पर मैं क्या कहूं; और क्या करूं इस के बारे में आप की तरफ़ से कुछ सूत्र चाहता हूं!

सत्येश्वर— देख! मानव-समाज को किस रास्ते ले जाना है इस के लिये मैं तुझे दस सूत्र देता हूं इन्हें ध्येय पद समझ!

१—धर्म और सभ्यता संस्कृति के बाहरी रूपों में थोड़ा-बहुत अन्तर भले ही रहे, फिर भी इन सब का विरोध हटाकर समन्वय करना है, जिस से थोड़ी-बहुत भिन्नता रहने पर भी मनुष्य-मात्र की एक सभ्यता संस्कृति और धर्म बन सके।

२—मनुष्य-मात्र की एक जाति बनाना है। अर्थात् वंश-परम्परा के आधार पर बने हुए जाति-भेदों को नष्ट करना है।

३— प्रान्तीय और राष्ट्रीय भाषाओं और लिपियों के रहने पर भी सारे विश्व की एक भाषा और एक लिपि बनाना है।

४— निष्प्राण रूढ़ियों की गुलामी हटाकर, भावना और बुद्धि का समन्वय कर, हर जगह की जनता के अधिक से अधिक भाग को विवेकी और सुधार-प्रिय बनाना है।

५— सारी दुनिया का एक राष्ट्र, या न्याय और बराबरी के आधार पर खड़ा हुआ सब का एक राष्ट्र-संघ बनाना अर्थात् राष्ट्रीयता आदि संकुचितताओं को मनुष्यता की दासी बनाना है, जिससे एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को दबा न सके।

६— युद्धों को गैर-कानूनी ठहराना है।

(प्रजापीड़कों से प्रजा की रक्षा के लिये सभ्य पुलिस रहे; और दो सरकारों के झगड़े या सरकार और प्रजा के बीच के झगड़े अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत या विश्व-संघ के द्वारा दिये गये फैसले के अनुसार निबटाये जाँय।)

७— राष्ट्र, प्रान्त आदि का शासन-तंत्र ऐसे साधु व्यक्तियों के या कर्मयोगियों के हाथ में पहुँचाना है—जिन के जीवन में कौटुम्बिक, प्रान्तीय, राष्ट्रीय, आदि किसी भी तरह का पक्षपात न हो और जो ज्ञानी, निस्वार्थ, व्यवहार-कुशल और प्रजा-प्रिय हों।

८— यंत्र और उस के आधार पर खड़े हुए पूँजीवाद से जो आर्थिक-विषमता और मुफ्तखोरी पैदा हुई है—उस का नाश करना है, जिस से सब को अपनी मिहनत और सेवा के अनुसार भोजन, वस्त्र और घर आदि मिल सकें, और यन्त्रों से सब को काफ़ी आराम

मिल सके ।

९— अपनी सेवा या गुण के आधार के बिना मिले हुए विशेषाधिकारों का खासकर जन्मसिद्ध विशेषाधिकारों का नाश करना है ।

१०— मनुष्य-मात्र को सदाचारी, सभ्य, ईमानदार, सेवा-भावी बनाकर कर्मयोगी बनाना है ।

हरएक व्यक्ति को अपना जीवन कैसा बनाना चाहिये, इस के लिये ये ग्यारह कर्तव्य बताता हूं, इसे कर्तव्य-पद समझ ।

१— विवेकी बनो ।

पुरानेपन का या नयेपन का और अपनेपन का मोह छोड़कर अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करके विश्वास करने की आदत डालो । रूढ़ियों के गुलाम न बनो ।

२— विवेकपूर्ण सर्वधर्म-समभाव रक्खो ।

सभी धर्मस्थानों से, सभी शास्त्रों से, सभी धर्मों के महात्माओं के जीवन से अच्छा पाठ सीखो, उनकी इज्जत करो, किसी एक के पक्षपाती बनकर दूसरों का अपमान कभी न करो, और न उनकी हर बात का बिना विचारे अनुकरण करो ।

३— सब मनुष्यों को एक जाति का समझो ।

गुण और दुर्गुण या कोई अनुकूलता-प्रतिकूलता देखकर विवाह आदि सम्बन्ध जोड़ना चाहिये, पर किसी को जन्म के कारण अलग जाति का न समझना चाहिये । राष्ट्र, प्रांत, वंश आदि के नाम पर द्वंद मचाना ठीक नहीं ।

४– अन्याय से किसी को कष्ट न पहुँचाओ, न उसके प्राण लो।

५– चोरी न करो।

६– किसी को धोका न दो।

७– मांस, शराब, जूआ आदि की बुरी आदतें छोड़ो।

८– श्रम और सेवा से रोटी कमाकर खाओ।

मांगकर, ऋण लेकर या और किसी तरह के दुरर्जन (बुरे व्यापार-सट्टा आदि) से पेट न भरो, और न पूँजीवादी बनकर मुफ्तखोर बनो।

९ – धन का अतिसंग्रह न करो।

१०– न्याय की रक्षा, अन्याय के विरोध के लिये, अथवा मनुष्यता के विरुद्ध स्वार्थ-साधन करने-वालों का नियन्त्रण करने के लिये हर तरह बलवान बनो।

११– अपनी या मनुष्य की दुर्दशा को भाग्य के भरोसे न छोड़ो, सदा प्रयत्नशील बनो।

तुम्हारा काम भाग्य के आगे सिर झुकाना नहीं, किन्तु उस के द्वारा उपस्थित किये गये विघ्नों की चोटों को हँसते-हँसते सहकर उस के साथ लड़ते रहना है।

इन इक्कीस कल्याणपदों को मूलमन्त्र बनाकर तुझे दुनिया के सामने मेरा सन्देश ले जाना है। फिर भी जब तुझे कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय में कुछ सन्देह मालूम हो तब तू विवेक-भवन जाकर निर्णय कर लिया कर, विवेक-भवन का द्वार तेरे लिये सदा खुला है।

मैंने कहा—परन्तु ऐसे भी अवसर आ सकते हैं प्रभु, जब विवेक-भवन में जाकर भी निर्णय न हो, अथवा ऐसे भी अवसर आ सकते हैं जब संसार की चपेटों से बचने के लिये मुझे कुछ समय के लिये ऐसे शरणस्थान की ज़रूरत हो जहां मैं बल संचय कर सकूं तब!

सत्येश्वर—तब तुझे मेरे धाम का द्वार सदा खुला मिलेगा। पहिली बार यहां तक आने में जो कष्ट हुआ है, जो लम्बा समय लगा है—वह अब नहीं लगेगा। सत्य-लोक के द्वार पर तुझे एक नया रथ मिलेगा, जिस में बैठकर तू क्षणभर में यहां आ सकेगा।

मैं हर्ष से गद्गद हो गया, गला भर जाने से मैं क्षणभर कुछ कह नहीं सका, अपने भावों को प्रगट करने के लिये मैंने भगवान भगवती के चरणों में प्रणाम किया।

भगवान ने कहा—अच्छा, अब तू जा! अपना कर्तव्य कर। एक मानव-धर्म-शास्त्र का निर्माण कर! उस पर चल और दुनिया को चलने का सन्देश दे।

मैंने कहा—जो आज्ञा, और भगवान-भगवती के चरणों में प्रणाम करते हुए भगवती से कहा—बड़ी मां, इस दास पर अपनी कृपा रखना, मानव-समाज आप की साधना में ही बुरी तरह अनुत्तीर्ण हुआ है, इसीलिये वह भगवान की कृपा से वञ्चित है और दुख उठा रहा है।

भगवती ने मेरे सिर पर हाथ रखते हुए कहा—जा, सब भला होगा।

फिर मैंने प्रणाम किया और विदा ली।

१६—विवेक दादा के घर

जब मैं सत्य-लोक के द्वार पर आया तब वहां एक बहुत ही सुन्दर और शीघ्रगामी रथ खड़ा था। रथ का सारथी मुझे देखते ही दो कदम आगे बढ़ा। मैंने पूछा—आप का नाम ?

उस ने कहा—मैं ध्यान हूं। सत्येश्वर के आदेश से मैं यहां खड़ा हूं। यह रथ तुम्हारे लिये ही भगवान ने भेजा है।

मेरे मुँह से निकला—'धन्य भाग्य'। मैं ध्यान-रथ में बैठकर क्षणभर में विवेक-भवन आ गया। विवेक दादा को प्रणाम किया और उन ने मुसकराते हुए कहा—खूब सैर की तुम ने तो।

मैं– जी हां ! आप की कृपा से सब के दर्शन हो गये। यह कहकर मैंने सत्य-लोक की यात्रा का सारा विवरण कह सुनाया। सब महात्माओं के साथ चर्चा और उन के सन्देश, दर्बार की बात, भगवान-भगवती के सन्देश-आदेश आदि विस्तार से सब सुनाया।

विवेक दादा ने खूब प्रसन्नता प्रगट की और कहा–बस, अब तो एक तरह से सब काम हो चुका, अब तो सिर्फ तुम्हें नई पोशाक पहिननी है।

मैं– आप जैसी पोशाक कहें वैसी ही पहिनूं !

विवेक– पोशाक तुम्हारे लिये तैयार है–लो ! देखो इस का नाम रखो 'सत्य-समाज' ! तुम सत्येश्वर के परम-भक्त हो, इसलिये उन्हीं के नाम पर इस पोशाक का नाम रखना ठीक होगा। जिस से नाम अर्थ का प्रतीक हो। तुम्हें उस अर्थ पर ध्यान रखना है।

मैं—आप बतलाइये कि सत्य-समाज का क्या अर्थ है ?

विवेक– वही जो सत्येश्वर ने इक्कीस कल्याण-पद के रूप में

तुम्हें बताया है। अब किसी भी प्रकार के अनुचित बन्धन तुम्हें नहीं बांध सकेंगे। न तो तुम्हें प्राचीनता की गुलामी करना है—न शास्त्रों की गुलामी। सत्येश्वर के आदेश के अनुरूप और मेरे कहने के अनुसार तुम्हें हर बात का निर्णय करना है।

इतना कहकर उन ने सत्य-समाज की रूप-रेखा बनाकर दी। और उस के अनुसार काम करने को कहा। और कहा कि कुछ समय बाद तुम फिर इस में मुझ से संशोधन करा लेना या जब जब ज़रूरत मालूम हो तब तब कराते रहना। सत्य-समाज सर्वतोमुखी क्रान्ति करने के लिये है। धर्म, अर्थ, राजनीति, व्यवहार, काम, मोक्ष आदि बातों पर उसे नया प्रकाश डालना है। शास्त्रीय गुत्थियों को सुलझाने के लिये नहीं, किन्तु जीवन की गुत्थियों को सुलझाने के लिये, इस की स्थापना तुम्हें करना है।

मैंने संकोच से मन्द स्वर में कहा—पर क्या मैं इतना बोझ उठा सकूंगा ?

विवेक—हुँः ! क्या अब भी इस प्रश्न को जगह है ? तुम ने सब तारक-बुद्धों से चर्चा कर ली, भगवान भगवती का आदेश पा लिया अब तो यह प्रश्न ही व्यर्थ है ! फिर भी जब तुम ने पूछा है तब तुम से कहता हूं कि यह क्रान्ति ऐसी नहीं है जो जल्दी हो जाय। ऐसी क्रान्तियों की सफलता उस का संस्थापक नहीं देख पाता, वह तो क्रांति को सफलता की राह में जाते हुए देख सकता है। और कभी कभी तो वह इतना भी नहीं देख पाता, पर मैं कहता हूं कि तुम देख सकोगे, इसलिये संकोच-दीनता आदि सब छोड़कर तुम तो काम में लग जाओ।

मैंने कहा– जो आज्ञा ।

विवेक– तो बस, अब जाओ ! 'शुभस्य शीघ्रम्' ।

मैंने उन्हें प्रणाम किया और विदा ली ।

१७—सरस्वती मन्दिर में

विवेक-भवन से मैं सीधा सरस्वती-मन्दिर पहुँचा । माँ सरस्वती को मैंने प्रणाम किया । उन ने कहा–आ गये भाई !

मैंने कहा– आ गया छोटी-मां ! आप के आशीर्वाद से मेरा जीवन सफल हो गया, मुझे भगवान के दर्शन हो गये । बड़ी-मां के भी दर्शन हुए । सत्य-लोक में खूब बिहार किया । विवेक-दादा का आशीर्वाद ही नहीं—पूरा सहयोग भी पा गया ।

सरस्वती– ओह, तुम तो एक ही साँस में बहुत-सी बातें कह गये । आखिर सुनूं तो यह सब कैसे किस प्रकार हुआ ?

मैंने विस्तार से सब बातें कह सुनाईं । सरस्वती-मां ने बहुत प्रसन्नता प्रगट की और कहा–तो बस ! मेरे स्थान में कहीं अपना कार्यालय बना लो ! और सत्येश्वर के सन्देशों के आधार पर साहित्य निर्माण करो । उस साहित्य को प्रचार में लाने के लिये, जनता के जीवन में उतारने के लिये मानव-नगर में भ्रमण करो । निःसन्देह अब तुम्हें लक्ष्मी-बाज़ार का सम्बन्ध कम करना पड़ेगा ।

मैं– एक तरह से तोड़ ही दूंगा छोटी-मां ।

सरस्वती– बिलकुल तोड़ देने से तो कैसे काम चलेगा ! लक्ष्मी के बिना मेरा, और मेरे बिना लक्ष्मी का, काम अच्छी तरह नहीं चलता ।

मैं– मैं व्यक्तिगत रूप में सम्बन्ध तोड़ दूंगा; क्योंकि मुझे

खुद अपने लिये लक्ष्मी-मां की ज़रूरत नहीं है, अब सत्येश्वर के दूत के रूप में—ख़ासकर कर्मयोग का पथिक होने के कारण—लक्ष्मी-मां की थोड़ी-बहुत सेवा करना पड़ेगी।

सरस्वती— (प्रसन्न होकर) मैं तुम से ऐसे ही त्याग की आशा करती थी। मुझे आशा है कि अब तुम स्वतन्त्र बनकर मेरा भंडार कीमती रत्नों से भरोगे।

मैं— आप का आशीर्वाद चाहिये मां, फिर सब कुछ सुलभ है।

सरस्वती— साधक के लिये मेरा आशीर्वाद दुर्लभ नहीं है। यह कहकर उन ने मेरे सिर पर हाथ रक्खा और मैंने सिर झुका दिया।

१८ —उपसंहार

इन घटनाओं को बीते नौ वर्ष पूरे होने आये। जहां तक सरस्वती की साधना का सवाल है—मैं कुछ संतोष की सांस ले सकता हूं। अनुभव और विवेक-दादा से मुझे पूरी मदद मिली है। मैंने फकीरी भी काफ़ी अपना ली है, पर विवेक-दादा के हुक्म से उस का बाहरी प्रदर्शन कुछ कम ही किया है।

बाकी काम कठिन है, इसलिये बहुत धीरे-धीरे कर पा रहा हूं। सहयोगी आते हैं—जाते हैं, क्षणिक हर्ष-विशाद होता है, पर इन से इतना लाभ हुआ है कि अधिक से अधिक स्वाश्रयी बनने की प्रेरणा मिली है, दुनिया को पढ़ने का अधिक अवसर मिला है और योग-वियोग पर समान रूप से हँसने की आदत पड़ी है।

समय समय पर असहायता का खूब अनुभव हुआ है, पर ऐसे अवसर पर सत्येश्वर के चरणों में पहुँच सका हूं और सान्त्वना

पा सका हूं, इसलिये निराशा क्षणभर को भी कभी नहीं फटकने पाई है। सत्येश्वर मेरी भूलें दुरस्त करते रहे हैं।

एक दिन भगवान से मैंने प्रार्थना की कि—

दुनिया का कुछ कौशल दे दो !
या ठग जाने का बल दे दो !!

भगवान ने इस का कुछ उत्तर न दिया, सिर्फ़ मुसकरा दिया। मैंने देखा, और आज भी देखता रहता हूं कि ठग जाने का बल कुछ-कुछ मिल रहा है। तब मैंने अपनी भूल समझी। फिर एक दिन जब मैं सत्येश्वर की सेवा में गया था; मैंने उन से कहा—भगवान ! मैं अपनी भूल समझा हूं। मेरी मांग उल्टी थी। ठग जाने के बाद ही कौशल मिलता है। उस दिन फिर भगवान ने मुसकरा दिया। अब समझ गया हूं। चोट खाने पर वेदना तो होती है, पर वह न तो पथ-भ्रष्ट करने पाती है—न निराश, बहुत ही थोड़े क्षणों को कार्य की गति मन्द कर पाती है। पर इस कमी की पूर्ति कौशल के मिलने से—अनुभव का आशीर्वाद मिलने से—पूरी हो जाती है।

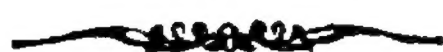
अभी दुनिया को अपनी पहिचान नहीं करा पाया हूं, कुछ सांख्ययोगी या ध्यानयोगी भी मनोवृत्ति होने के कारण दुनिया की तरफ़ कुछ उदासीनता भी रहती है। फिर भी, जहां तक अपने से सम्बन्ध है—अकर्मण्यता को प्रवेश नहीं करने देता हूं।

भगवती की साधना के मार्ग में भी खूब कठिनाइयों का अनुभव हो रहा है, पर कठिनाइयाँ अपरा-मनोवृत्ति तक चोट पहुँचाकर रह जाती हैं और परा-मनोवृत्ति को सुरक्षित रखने की चेतावनी दे जाती हैं।

यद्यपि मैं अपनी त्रुटियों को खूब समझता हूं, दुनिया की सफलता की दृष्टि से सन्तुष्ट भी नहीं हूं, फिर भी जब मैं अपने अतीत जीवन पर, उस की प्रगति-शीलता पर नज़र डालता हूं तब अपने विकास पर आश्चर्यचकित हो जाता हूं। सिर्फ़ इसलिये नहीं कि विकास हुआ है, किन्तु इसलिये भी कि विकास का प्रारम्भ बहुत-थोड़ी पूँजी से हुआ,—यह सब सत्येश्वर-भगवान, विवेक-दादा, और सरस्वती-मां का प्रसाद है।

इस प्रकार मैं आध्यात्मिक जगत् में काफ़ी यात्रा कर चुका हूं; फिर भी अभी काफ़ी बाकी है। दुनिया की दृष्टि से सफलता का किनारा कब पाऊंगा?—कह नहीं सकता, पर इस की चिन्ता बहुत कम है। अब तो यही सोचता हूं कि मुझे तो सत्येश्वर की तावेदारी करना है। जब तक उन की मर्ज़ी है—कर रहा हूं, उन की मर्ज़ी न होगी—उन के चरणों में चला जाऊंगा। यही अवस्था तो मोक्ष है, परम विकास है।

२७ अपरैल ११९४३ इ. सं. —सत्यभक्त



सत्यभक्त साहित्य

सत्यसमाज के संस्थापक स्वामी सत्यभक्तजी ने धार्मिक सामाजिक राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय तथा जीवन-शुद्धि विषयक जो विशाल साहित्य रचा है, जो गद्य, पद्य, नाटक, कथा आदि अनेक रूप में बुद्धि और मन पर असाधारण प्रभाव डालनेवाला है उसे एकबार अवश्य पढ़िये।

१ सत्यामृत मानव-धर्म-शास्त्र [दृष्टि-कांड] १।)

२ सत्यामृत " [आचार-कांड] १॥।)

३ सत्यामृत " [व्यवहार-कांड] छप रहा है)

ऐसा महाशास्त्र जो सब धर्मों का निचोड़ कहा जा सकता है और जिसमें धार्मिक सामाजिक राष्ट्रीय अन्तराष्ट्रीय व्यावहारिक आध्यात्मिक आदि जीवन के हर पहलू पर पूरा प्रकाश डाला गया है और जो अनेक दृष्टियों से मौलिक है।

४ निरतिवाद—भारत की परिस्थिति के अनुसार साम्यवाद का रूप.... ।=)

५ सत्य-संगीत—सर्वधर्म-समभावी प्रार्थनाओं और जीवन-शोधक गीतों का संग्रह.... ॥=)

६ कुरान की झाँकी— कुरान में आये हुए उपदेशों का संग्रह =)

७ जैनधर्म-मीमांसा [भाग १].... १)

८ जैनधर्म मीमांसा [भाग २].... १॥)

९ जैनधर्म-मीमांसा [भाग ३].... १॥)

जैनधर्म में आई हुई विकृतियों और उसकी अपूर्णता को हटाकर उसका संशोधित रूप।

१० न्यायप्रदीप (हिन्दी में जैन न्याय का मौलिक ग्रन्थ) .... १)
११ बुद्ध-हृदय —म. बुद्ध की जीवन घटनाओं पर उन्हीं के शब्दों में विचार.... ।=)
१२ कृष्णगीता —आजकल की भी समस्याओं को सुलझाने वाली नई गीता। करीब एक हजार सुन्दर पद्य और गीत ।)
१३ ईसाई-धर्म.... म. ईसा का चरित्र और उपदेश .... ।-)
१४ हिन्दू-मुस्लिम मेल.... -)
१५ हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद [उर्दू अनुवाद].... =)
१६ आत्म-कथा—पू० सत्यभक्तजी का उन्हीं के शब्दों में अनुभवपूर्ण जीवन चरित्र... १।)
१७ विवाह-पद्धति—हिन्दी में ही सर्वधर्म समभावी विवाह पद्धति (दूसरा संस्करण).... =)
१८ सर्वधर्म-समभाव.... -)
१९ नागयज्ञ [नाटक]—राष्ट्रीय एकता का मार्गदर्शक एक ऐतिहासिक नाटक... ॥)
२० सत्यसमाज और प्रार्थना.... (दूसरा संस्करण).... -)
२१ सुलझी हुई गुत्थियाँ—पू० सत्यभक्तजी द्वारा दिये गये कुछ प्रश्नों के विस्तृत उत्तर.... ।
२२ अनमोल पत्र—सत्यभक्तजी के कुछ पत्रों के खास खास अंश -)
२३ शीलवती—वेश्याओं के सुधार की एक व्यावहारिक योजना -)
२४ मेरी विकास-कथा— ।

मिलने का पता—सत्याश्रम, वर्धा, [सी.पी.]